साहित्यकार

लेखक—

सुरेन्द्रनारायण चौधरी
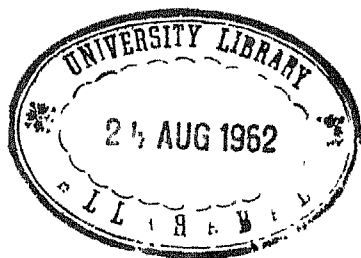
प्रकाशक—

कल्याणदास एण्ड ब्रदर्स

वाराणसी

प्रकाशक—

कल्याणदास एण्ड ब्रदर्स

ज्ञानवापी, वाराणसी।

वितरक—

बिहार ग्रन्थ कुटीर

खजांचीरोड, पटना—४

तथा

बम्बई बुकडिपो

कलकत्ता—७

प्रथम संस्करण

जन्माष्टमी सं० २०१८

मूल्य—

दो रुपया पचास नये पैसे

मुद्रक—

गौरीशंकर प्रेस,

मध्यमेश्वर, वाराणसी।

प्रकाशकीय

प्रस्तुत उपन्यास साहित्य के विभिन्न अंगों तथा साहित्य-कारों की कोमल भावनाओं पर आधारित है। अपने तरह का एक नया कथानक, एक नया वातावरण इस उपन्यास में आपको मिलेगा।

लेखक का यह प्रथम प्रयास है परन्तु इसमें लेखक ने जिस प्रतिभा, शिष्ट भाषा तथा रोचकता का परिचय दिया है, वह सराहनीय है। पाठक कहीं-कहीं तो भावनाओं में इतना आत्मविभोर हो जाता है कि वह प्रभात, उषा, ज्योत्स्ना में खो सा जाता है।

उषा

निरभ्र चाँदनी में अपनी साड़ी के छोर को उँगली से लपेटती, कर्णफूल को स्पर्श करती हुई केश-राशि को सम्भालती उषा चली जा रही थी—किरण रेस्टोरेन्ट में। ऐसे चल रही थी जैसे स्वयं से अलग होकर बिखर जाना चाहती हो। कानपुर का यह किरण रेस्टोरेन्ट शब्द के पूरे अर्थ में किरण था। नगर का एक बड़ा अंश यहाँ गर्मी और जाड़ा—सब समय इकट्ठा होता—कुछ अपनी कहने, कुछ दूसरों की सुनने। व्यक्ति की किरणों में भी आभा देखने आते।

व्यक्ति की अपनी किरणें हैं। किरणें व्यक्तित्व के अनुसार होती हैं। जैसा व्यक्तित्व होता है वैसी ही किरणें होती हैं। कुछ से प्रकाश होता है, कुछ से आँखें बन्द हो जाती हैं।

उषा किरण रेस्टोरेन्ट में पहुँची। धम्म से कुर्सी पर गिर पड़ी। सिर को कुर्सी के ऊपरी हिस्से से टिकाए ऊपर की ओर मुँह किए लगी हुई कालिमा और धुएँ की गोलाई में अपनी आँखों को लगाए रही। स्वेद-विन्दु उसके गालों की मृदु लाली को भिगोए जा रहे थे।

बेयरा आया। उषा ने पूछा—'प्रभात जी नहीं आए थे ?"

बेयरा—'एक सज्जन आए थे। वे देखने में गोरे थे; मूँछ-दाढ़ी बढ़ी हुई, घुंघराले लम्बे लम्बे बाल, रेशमी कुर्ता पहने,

पैर में चप्पल डाले एक पत्रिका लिए आए थे। उन्होंने कहा—'अगर, कोई पूछे तो कह देना, मैं पाँच बजे तक लौट कर आऊँगा।'

उषा समझ गयी। घड़ी देखी। रात के साढ़े चार बज रहे थे। आधा घण्टा और!

आयी-थकी-हारी, यहाँ पर अपनी कमजोरी के पंख काटने। अब डर रही है—पुन: आधे घण्टे की घुटन! कमजोरी के पंख फैलकर उसकी तरफ बढ़े आ रहे थे। घबराहट अन्दर और बाहर। सड़क पर लारी, ट्रक, कार, बग्गी, और रिक्शेवाले का हो-हल्ला, जनरव सब उसकी ही तरफ एक—काली छाया की तरह बढ़े आ रहे थे। घबराकर उसने अपनी आँखें बन्द कर लीं। उसी समय 'यह क्या उषा?' कहते हुए प्रभात ने उसकी हथेलियों को हटा दिया। कुर्सी पर बैठते हुए प्रभात ने कहा—'आज अपने से, मुझसे इतनी अशान्त कि मेरे आते ही आँखें बन्द कर ली?'

उषा—'नहीं, प्रभात ऐसी बात नहीं है। वास्तविकता तो यह है कि जहाँ तुम्हारे चरण नहीं जाते वहाँ मेरी उपस्थिति नकारात्मक होती है।'

प्रभात—'हूँ! मैंने आज समझा कि उषा प्रभात से अलग होकर उदास भी होती है। पहले भी ऐसा ही समझता था कि मेरे जैसे व्यक्ति से कौन सन्तुष्ट हो सकता है? इसमें तो मेरी नियति की सच्चाई है!'

उषा–'यह बात सत्य है कि 'उषा' मे कभी 'प्रभात' नहीं मिलता। 'उषा' चली जाती है तब 'प्रभात' आता है। पर यह तो मानवीय धारणा, कल्पना या विश्व का सत्य है। यह 'प्रभात' जो मेरे सामने है, इससे उदासी नहीं। हाँ, उदासी है तो इस अर्थ में कि 'उषा' के पास वैसी चीज नहीं है, 'उषा' स्वयं वैसी नहीं है जिसकी बातें सुनी जाएँ। मेरा 'प्रभात' वैसा है कि जिसकी बातें पकड़ में नहीं आती हैं। वे बातें उच्च स्तर की होती हैं। तो वे मुझसे बंधे तो कैसे ?'

प्रभात–'हा हा हा हा ! तुमने तो अच्छी कहानी सुनाई। यह तो कवि गुरु रवीन्द्र के लिए कहा जा सकता है। यह बात कालिदास के साथ सत्य हो सकती है। मैं वैसा नहीं हूं। मैं तो बसन्त के समान हूँ, जो आता है तो मस्ती लिए, मादकता लिए, स्मृति लिए, विश्वास लिए, किसलय लिए, बौरों में मधु लिए। जाता है तो पत्तों का मर्मर दिए जाता है, जो अपनी आवाज से हमें व्यथित कर देते हैं। मेरी कविताएँ तो तुम्हें ही अच्छी लगती हैं न ?'

उषा–'साहित्य को केवल मनोरंजन का साधन समझने वाला मूर्ख किसी महान कृति पर साधुवाद कैसे दे सकता है ? वह तो रेलगाड़ी में सस्ते साहित्य पर अट्टहास करता है। उसकी आलोचना से क्या होनेवाला है ? नहीं समझने वाले से समालोचना की, निर्णय की, अपेक्षा कैसे की जा सकती है ?'

प्रभात—'समझ गया, समझ गया। स्वीकार करता हूँ, तुम मेरी इज्जत करती हो। अच्छा, तुम्हारी पढ़ाई-लिखाई कैसी चल रही है ?'

उषा—'अब सन्तोषजनक है। तुम्हारी कविता, कहानी तथा उपन्यास में जीवन के आसार मिलते हैं। साहित्यकार ! तुम यशस्वी हो। युग तुम्हारी वाणी, तुम्हारे दृष्टिकोण और तुम्हारे भावों को पूजे कि तुम और आलोक फैला सको धरती प्रांगण में और उसके बाहर ···'

प्रभात ने उषा के मुँह पर हाथ रख दिया। उषा चुप हो गयी। प्रभात ने कहा—'अब मैं जाता हूँ। रात के नौ बज रहे हैं। खाना बनाना है। तुम्हारे घर के सब तुम्हारी राह देख रहे होंगे। जाओ। कल पुनः मिलेंगे। विदा।'

प्रभात उठकर चलने लगा तो उषा ने उसके हाथ को पकड़ लिया। प्रभात खड़ा हो गया। उषा ने उसकी बढ़ी हुई दाढ़ी पर हाथ फेरते हुए कहा—'यह दाढ़ी-मूँछ क्यों बढ़ा लिए हो ? रवि की नकल कर रहे हो क्या ?'

प्रभात—'रवि की नकल केवल दाढ़ी में करके क्या पाऊँगा ? उनका व्यक्तित्व मानव की परिधि को घेरे हुए है। उनका अनुसरण करना भी कितना कठिन है ?'

उषा लौटी अपने घर। उस तरह नहीं लौटी जिस तरह लौटकर आना चाहती थी। उसकी गूँथी सुलझती हो नहीं।

वह प्रतिदिन रेस्टोरेन्ट में जाती—कुछ कहने, कुछ माँगने और इन सब के बाद कुछ देने। पर साहित्यकार प्रभात के सामने जाकर कहना, माँगना और देना—सब कुछ भूल जाती। देखती रह जाती—यह काले बाल, यह बढ़ी हुई दाढ़ी, यह फटा हुआ कुरता, यह टूटी हुई चप्पल, यह कविता की पुस्तिका…… संख्या की आवृति…… शब्दों की आवृति …… भावों की आवृति… आकृति की आवृति……जैसे उसपर आवृति का आवरण डाल दिया गया हो! एक दिन प्रभात से पूछा—'मेरे साहित्यकार! यह फटा कुरता क्यों पहनते हो?'

प्रभात हँस दिया। कहा—'कला और काव्य के साधक सर्वदा अभागे होते हैं—भावना में या व्यवहार में! विश्व की प्रत्येक मिट्टी में नीच राजनीतिज्ञों पर, मानवता के हत्यारों पर, वेश्याओं पर रुपए लुटाए जाते हैं। प्रत्येक देश का साहित्यकार (शब्द के पूरे अर्थ में) अन्न के अभाव में मरता है या उसे किसी नदी में डूबो दिया जाता है या देश-निष्कासन की सजा भोगता है। वह युग-स्रष्टा है, दृष्टि देता है, विश्वास देता है। पर स्वयं सबके लिए रोता है। तो भी वह जीता है। क्यों? क्योंकि वह मानवता का प्रहरी है, संस्कृति एवं सभ्यता का उद्धारक है। उसका आशीर्वाद उन्हें भी मिलता है जो उसकी झोपड़ी में रात में छिपकर आग लगा देते हैं। झोपड़ी जल जाती है। वह वर्षा में बाहर पड़ा रहता है तो भी मानव का कल्याण ही करता है।'

उषा की आँखों से आँसू गिरने लगे। वह प्रभात के वक्ष से लगकर रोने लगी। प्रभात सोचने लगा–'यह रूदन क्या लाएगा? यह आस्था जो वर्षा की बून्दों के समान झर रही है–यह क्या लाएगी? यह कहाँ बहा ले जाएगी? उषा को कैसे छोड़ा जा सकता है? यह साहित्यकार की मर्यादा से खेल हो रहा है या कमजोरी का नृत्य है? पगली! मैंने कब कहा था कि तुम मेरे जीवन में आओ? मैं तो बराबर तुम्हें समझाता ही रहा–उषा, तुम बालक की तरह बालू के घर क्यों बनाती हो? ये बालू के घर पानी की धारा से नहीं लड़ सकते। हवा के साधारण झोंके पर गिर जाएँगे! मरुभूमि में ओएसिस का अन्वेषण! यह क्या कर रही हो तुम? तुम कह सकती हो कि साहित्यकार बालू का घर नहीं है और न उसका प्रेम ही। पर जो साधारणीकरण उसके जीवन में है वह क्या तुमसे ढोया जा सकता है?'

'जानता हूँ, तुम्हारे आदर्श बड़े हैं। पर बड़े आदर्श को मुझसे क्यों सम्बद्ध करती हो? यह नहीं है कि मैं तुमको ओछा समझता हूँ। यह केवल इस कारण कि वह आदर्श समाज की नींव पर टिक न सकेगा। तब मुझे पीड़ा होगी।'

देखता हूँ—'तुम रोज स्नेह जोड़े जाती हो मुझसे।'

और मैं सोचता हूँ—'यह स्नेह, यह श्रद्धा मुझे तुमसे अलग न कर दें। जाओ।'

(६)

उषा चली गयी घर। प्रभात भी चला गया।

× × × ×

उषा घर लौट आयी। आकर पलंग पर गिर पड़ी। बहुत देर तक अर्द्धचेतन अवस्था में रही। नौकर आया और बोला—'खाना तैयार है।' उषा ने उससे कह दिया कि खाना लाकर वह कमरे में रख दे। भूख लगने पर वह खाएगी। दीवारों की स्वच्छता, कमरे की इयता, वस्तुओं की वास्तविकता पर अन्तर में टिप्पणी करती रही। मन खिन्न हो गया। कहीं भी मन बँध न सका तो किताबें देखने लगी। यशपाल की 'दिव्या', कालिदास का 'कुमारसम्भव', रवि की 'गीताञ्जलि', प्रसाद की 'कामायनी' पर्लबक का 'द गुड अर्थ'······कहीं भी शान्ति नहीं मिली तो रवि की गीताञ्जलि की कुछ पंक्तियाँ गुनगुनाने लगी—

'तुम आकाश हो और तुम ही नीड़ हो!'

हे सुन्दर, नीड़ में तुम्हारा प्रेम ही आत्मा को वर्ण, शब्द और गन्ध से परिवेष्ठित किए हैं।'

पंक्तियाँ गुनगनाती रही मानो अपने अन्तर में उनकी गहनता, गुरुता उतारना चाहती हो। कल्पना के पंख इतने सुखद लगते कि उनके स्पर्श से उसकी पलकें गिर जातीं। पुनः अस्पष्ट बोलने लगती :

'तुम आकाश हो और तुम ही नीड़ हो!'

साहित्यकार ! साहित्यकार !! इस आकाश में तुम कहाँ हो ? या तुम ही आकाश हो ? तुम ही नीड़ हो ?'

यह क्रम बहुत दिनों तक चला। खाना वह प्रायः नहीं खाती। कुत्ते खाते। स्वास्थ्य गिरता गया। गीताञ्जलि क्या लाएगी—उसके लिए—कौन कह सकता था ?

प्रभात

मालरोड में, फूलबाग के निकट ही प्रभात ने एक कमरा ले लिया था। कमरे की लम्बाई-चौड़ाई उतनी ही थी जितने में एक व्यक्ति किसी भी तरह रह सकता है। कमरे में एक चौकी थी। उसपर एक तरफ किताबें रखी हुई थीं।

प्रभात कानपुर का ही रहनेवाला था। पर वह स्नातक कक्षा में सफलता प्राप्त करके अलग रहने लगा। साहित्य-सर्जन में लगा रहता था। लोग हँसते—उसकी कविताएँ सुनकर। उसपर 'प्रयोगवाद' का असर था और वह 'निराला' के 'मुक्त छन्द' से भी प्रभावित था। वह अपने को प्रयोगवादी नहीं मानता था—संकुचित अर्थ में। वह जानता था कि प्रयोगवाद में दुरूहता आ गयी है, कि वह साधारण जनता की पहुँच के बाहर है, कि उसे सब में पैठने के लिए साधारणीकरण की आवश्यकता है। पर वह यह भी मानता था कि विशेषकर भारत में, जहाँ प्रजातंत्रात्मक गणराज्य है (जो तर्क पर आधारित है!) कविता में बौद्धिकता चाहिए। वह स्वयं 'मानवतावाद' का समर्थक था। पर यह भी मानता था कि लक्ष्य तक हम छोटी पगडंडियों पर चलकर भी पहुँच सकते हैं। अर्थात् यदि 'प्रयोगवाद' सत्य की प्राप्ति का एक संकीर्ण रास्ता है तो भी उससे जीवन के आसार प्राप्त किए जा सकते

हैं। यह भी सत्य है कि 'प्रगतिवाद' के शैशवावस्था में ही उसने जन्म लिया या 'छायावाद' के 'खोखलापन' (मैं नहीं स्वीकारता !) के अन्दर से निकला है तो इसमें कोई अनैतिकता नहीं। इसका मूल तो उस भयानक युद्ध में है जिसने व्यक्तिगत चिन्तन में ही मनुष्य के विश्वास को छोड़ दिया है। इस तरह उसे कोई हीनता नहीं दीखती। वह युग के साथ था। किसी भी तरह से वह मानव-कल्याण का समर्थक था। वह 'वाद' का भक्त नहीं था और न वह किसी 'वाद' का जन्मदाता होना चाहता था। वह 'नयी कविता' के जन्म-दिवस के निकट ही था।

प्रभात यह भी मानता था कि पाठक को भी अपने लेखक या कवि तक पहुँचने में अपने को कुछ संस्कृत करना चाहिए। अर्नेस्ट हैमिंग्वे की रचना 'एक्रॉस द रिवर एण्ड इनटू द सी' पर जब लोगों ने काफी आक्षेप लगाया और उसे निकृष्टतम उपन्यास होने का आरोप लगाया तो इसपर उसने कहा था—'अंकगणित, रेखागणित और बीजगणित की सीमाएं पार करता हुआ अब मैं कैल्कुलस पर आ गया हूँ। अगर लोग उसे नहीं समझ पाते तो वे भाड़ में जाएँ।' प्रभात ऐसा नहीं कहना चाहता था। पर वह चाहता था कि पाठक अपना स्तर ऊँचा उठाएँ।

× × × ×

रविवार को सन्ध्या समय फूसबाग की एक बेंच पर बैठा हुआ था। चालीस वर्ष के एक सज्जन एक अठारह वर्षीया

लड़की के साथ घूम रहे थे। फूल बाग में बहुत कार्यालय हैं ! दो मंजिले पर संगीत और नृत्य विद्यालय है। प्लेट लगी है—'कॉलेज ऑफ म्यूजिक एण्ड फाइन आर्टस्'। दिन के पाँच बज रहे थे। कुछ-कुछ धूप थी। वह सज्जन स्वयं कार्यालय में चले गए। लड़की पीपल के नीचे बेंच पर बैठ गयी। प्रभात उसी बेंच पर एक किनारे बैठा था। दोनों एक दूसरे को देखते रहे। वह सज्जन आए तो प्रभात से परिचय हुआ। प्रभात ने अपना पूरा नाम बताया तो वह सज्जन और लड़की दोनों खुश हुए। वह सज्जन लड़की के पिता थे। उन्होंने बताया कि उसका नाम उषा है। वह स्नातक-कॉलेज में पढ़ना चाहती है। कॉलेज खुलने में देर है। उषा संगीत भी सीखना चाहती है। संगीत-कॉलेज के आचार्य महोदय से भेंट न हुई। अतः प्रभात ने उन्हें अपने कमरे में बैठाया। उषा के पिता ने जब कमरा देखा तो प्रभात के प्रति सहानुभूति से उनका हृदय भर गया। उषा कुछ देर कमरे को देखती थी, कुछ देर प्रभात को देखती थी। प्रभात जूठे बर्तनों को धोने के लिए बैठा। धोते हुए पूछा—'हाँ तो उषाजी संगीत सीखना चाहती हैं ? सुन्दर है !'

प्रभात ने बर्तनों को साफ करते हुए अपनी कहानी सुना दी। उषा सुनकर बहुत बेचैन हो गयी। वह अकेले बैठकर सब कुछ एक बार भी अपने अन्तर में लाना चाहती थी। वह समझना चाहती थी कि यह केवल बकवास है या और कुछ ? वह जूठन से भरी हुई थाली, वह कटोरा '' जैसे कुछ गम न हो।

'बस' आयी। दोनों बस में बैठे। प्रभात को गम्भीर दृष्टि से देखते उषा चली गयी।

प्रभात उषा का परिचय इसी प्रकार हुआ !

× × × ×

सवेरे ही प्रभात ने खाना बनाया। कवि-सम्मेलन था। बाहर से आये कवियों का स्वागत एवं भोजन का प्रबन्ध कराना था। वह स्वयं सभापति था। युनिवर्सल बुकस्टॉल पर गया। रवि बाबू का 'द क्रेसेन्ट मून' लेना था। दूसरी तरफ पाँच-छ लड़कियाँ खड़ी थीं। उनमें से एक ने प्रभात को कड़ी निगाह से देखा। पुनः दोनों हथेलियों को जोड़कर नमस्ते किया। प्रभात ने उसे पहचानते हुए कहा—'आप ? हाँ, अब बात याद आयी। उषा जी, क्या लेना है ? उषा ने बताया कि उसकी सखि को वर्डस्वर्थ का 'द प्रील्यूड' लेना था। प्रभात ने उसका नाम पूछा।

'ज्योत्स्ना'—उषा ने कहा।

प्रभात—'ज्योत्स्ना ? ज्योत्स्ना ! बहुत सुन्दर नाम है !'

उषा सुनकर हँसने लगी। ज्योत्स्ना ने सुनकर मुँह फेर लिया। यह प्रभात और ज्योत्स्ना के परिचय की एक हल्की किरण थी। प्रभात कवि-सम्मेलन में चला गया।

उषा प्रतिदिन सन्ध्या-समय प्रभात के घर जाती, बातें होतीं। साहित्य की आलोचना होती। उषा ओछी पत्रिकाओं की सामग्रियाँ उद्धरण-स्वरूप रखती तो प्रभात हँसने लगता।

वह कहता कि प्रयोगवाद के लेखक दोषी नहीं हैं। दोषी हैं– बहकर आनेवाले कुछ टूटे हुए पत्थर के टुकड़े। जो वास्तव में साहित्यकार है वह जीवन के लिए सर्जन करता है। उसने उषा को 'अज्ञेय' के साहित्य का परिचय दिया और 'नदी के द्वीप' पढ़ने को दिया।

उषा ने घर ले जाकर उसको पढ़ा। मिलने पर उसने कहा–'रेखा मुझे बहुत भली लगती थी। पर बाद में तो वह नागिन हो गयी। हाँ, गौरा! गौरा आरम्भ से अन्त तक आस्थावान रही। आरम्भ से अन्ततक आस्थावान!! मैं भी तुम्हारे प्रति आस्थावान हो गयी हूँ, 'मेरे साहित्यकार!' प्रभात 'साहित्यकार' सुनते ही हँस दिया। साहित्यकार! मैं? मर्यादा की बोझ मुझसे नहीं ढोयी जा सकती! उसके साथ आत्मसमर्पण चाहिए। आत्म विश्वास उसका प्राण है। यह सब कुछ आरंभ के संस्कार से भी प्राप्त होता है। परिश्रम से तो बहुत कुछ पाया जा सकता है। हाँ, बातें करते समय सहज सौजन्य का व्यवहार करो।

प्रभात, प्रमोद, ज्योत्स्ना

चार दिन चले गए, उषा नहीं आयी। आज प्रभात बैठा गीताञ्जलि की पंक्तियाँ गुनगुना रहा था। एक लड़की निकट ही आकर खड़ी हो गयी। प्रभात ने पूछा—

'आप किसको खोज रही हैं ?

'मैं प्रभात जी को खोज रही हूँ।'

'आप ? आपका नाम ज्योत्स्ना है ?'

'हाँ।'

प्रभात—'क्या बात है ?'

ज्योत्स्ना—'उषा ने मुझे भेजा है। उसका एक पत्र आपके नाम है।' प्रभात पत्र पढ़ने लगा :

'मेरे साहित्यकार।'

'सोचती हूँ तो याद आता है—चार दिन हुए—तुमसे मिले। जोड़कर भी देखती हूँ तो चार दिन ही होते है। गणित में चार दिन! और मन में ? अन्तर में ? भावना में ? आत्मा में ? चार युगों से भी अधिक। चार युग जो कुछ अलग नहीं कर देते उससे अधिक अलग हो गया है। बहुत कुछ टूट गया है। क्या टूट गया है—यह हृदय नहीं कहता। अन्तर रोता है—कुछ मिला था जो पहले नहीं था। वही अब पुनः अलग हो

रहा है। पहले क्या नहीं था? अब क्या मिल गया? अभी टूट क्या रहा है? यह दर्द किसका है? यह प्यास किसकी है? यह बेचैनी किसमें है?......

याद है–पहले तुम नहीं थे। ठीक है। कुछ महीने पहले तुम नहीं थे। अब हो! पर क्या हो? पर किस तरह हो? उसी तरह हो जिस तरह मैं रखना चाहती थी? नहीं। उस तरह हो जिस तरह एक साहित्यकार रहता है! स्वीकार करती हूँ, साहित्यकार के साथ मर्यादा है। उसको भंग कैसे करूँ? डर है कहीं अपने पैर न खींच लो।

व्रज बल्लभ कृष्ण मथुरा चले गए। और राधा? व्रज की मिट्टी में, व्रज के फूलों के साथ रोती रही, तड़पती रही। क्यों नहीं गयी राधा? मर्यादा के कारण! मैं भी तुम्हारी मर्यादा रखूंगी।

तुम्हारी,
उषा।

कुछ देर तक मौन रहने के बाद प्रभात ने पूछा–'आप उषा के निकट ही रहती हैं?'

ज्योत्स्ना–'नहीं। अभी एक सम्बन्धी के घर आयी हूँ।'

प्रभात–'कितने दिनों तक रहना है यहाँ?'

ज्योत्स्ना–'छः महीने रहूँगी।'

प्रभात–'उषा अच्छी हैं न?'

ज्योत्स्ना–'उनकी माँ मर रही हैं। इसलिए उषा बहुत बेचैन है।'

प्रभात—'मैं सन्ध्या-समय आऊँगा।'

ज्योत्स्ना चलने लगी तो प्रभात ने खाना खाने के लिए रोक दिया। पहले तो वह आतिथ्य स्वीकार करने से घबरायी पर बाद में बहुत आग्रह करने पर खाना खाने बैठ गयी। दो मोटी रोटियाँ, दही, आलू की सब्जी। प्रभात मेजबान हो गया। जब ज्योत्स्ना ने खाना खा लिया तो प्रभात को भी खाने के लिए बाध्य किया। पर न रोटियाँ थीं, न सब्जी। प्रभात मुस्कराता रहा। और ज्योत्स्ना? वह इस व्यक्तित्व में घिर सी गयी। किसी तरह घर आयी।

× × × ×

ज्योत्स्ना के आने के पहले ही उषा की माँ मृत्यु के पंजे में जा चुकी थी। उषा सीमाहीन वेदना में डूब रही थी। ज्योत्स्ना ने उसे सान्त्वना दी। प्रभात भी आया। उसने भी संसार की वास्तविकता को उषा के समक्ष रखा। बताया कि मृत्यु के समक्ष सब पंगु हैं। मृत्यु अस्तित्व की अन्तिम अनिवार्यता है। वह अलग है। उसकी गति हमारी अगति में है। पर वह अमरता भी देती है। उसे अपनाने के बाद व्यक्ति को यश मिलता है। साहित्यकार या कलाकार के साथ तो यही सत्य है।

प्रभात ने उषा को समझाया कि प्रतिदिन प्रतिक्षण कोई न कोई कहीं भी मरता है। कोई जन्म भी लेता है। मृत्यु और जन्म! जीवन के ये दो खेल—अनादि से मानव के साथ रहे हैं। मृत्यु दूसरे जीवन के प्रारम्भ की प्रथम सफल योजना है। जन्म मृत्यु द्वारा दिया हुआ नूतन कलेवर है। दोनों अपने में

सत्य ! केवल सत्य नहीं 'शिव' भी । जो सत्य है वह 'शिव' अवश्य है । जब 'शिव' है तो अपने शिवत्व से वह सुन्दर भी है । जन्म और मृत्यु ! सत्यं ! शिवं !! सुन्दरं !!! मानवमात्र इसे टाल भी नहीं सकता । कभी-कभी यही विवशता 'ईश्वर' को मानने के लिए बाध्य करती है । अतः निकलती हुई लाश पर आंसू बहाना और नव शिशु के आगमन पर गीत गाना—यह व्यापार लगा रहता है । पर मैं कहता हूँ कि जाने वाले को स्नेह दो, मनुहार दो । यही कर्तव्य है । दर्द मत दो । दर्द इस धरती पर अपने लिए छोड़ दो । जो मृत्यु की गोद में जाए उसे चूमो, सान्त्वना दो । जो तेरे घर आए उसे प्यार दो ।

देखो उषा, सन्ध्या जा रही है । रात आएगी । चाँद आएगा । उठो । आश्रय कबतक ढूढ़ोगी । जिसमें तुम आश्रय ढूढ़ रही हो वह शाश्वत है ? नहीं । पर उसके कार्य शाश्वत हैं । राजघाट की संनिधि में देखो । वहाँ कर्तव्य का दीप जल रहा है । वहाँ अमरता की शिखा निकलती है । वहाँ मृत्यु ने घुटने टेक दिया है । वही मृत्यु का पराजय है । अपने कर्तव्य से, मानव का कल्याण कर मृत्यु को पराजित करो । अमरता तेरे आगे बैठी रहेगी । मृत्यु की मृत्यु के लिए मानवमात्र को नष्ट करने वाले, यंत्रों को तैयार करने वाले, अपने को रोटी और रुपए पर बेचनेवाले वैज्ञानिक की ओर न देखो । वह आज बड़े-बड़े देशों में गुलाम बनकर नीच राजनीतिज्ञों के आदेश का पालन कर रहा है । वह मृत्यु को पराजित करता है पर पेट के लिए वह खिलौना बना है । यह इस युग की देन है ।

चलो, उठो उषा। शव पर फूल चढ़ाने चलो। तीनों फूल चढ़ाए-शव पर। रात में उषा के घर पर ही वे रह गए। रात में गीताञ्जलि की पंक्तियाँ गुनगुनाते रहे—

'This is my prayer to thee, my lord—Strike, strike at the root of penury in my heart.

Give me strength lightly to bear my joys and sorrows.

Give me the strength to make my love Fruitful in service.

Give me the strength never to disown the poor or bend my knees before insolent might.

Give me the strength to raise my mind high above daily trifles.

And give me the strength to surrender my strength to thy will with love.'[1]

तड़के ही प्रभात चला गया। ज्योत्स्ना से कह गया कि वह उषा को सम्भालेगी। अवसाद की बेला में साथ हितकर होता है। उसमे विश्वास बँधता है।

१. मेरे ईश्वर, मेरी तुमसे यही प्रार्थना है:—

मेरे हृदय की क्षुद्रता के मूल पर आघात करो। मुझे अपने सुखों और दु:खों को सहने का बल दो। मुझे अपने प्रेम को सेवा में प्रवृत करने का बल दो। गरीबों से अलग नही होने या किसी असह्य शक्ति के सामने घुटने नहीं टेकने का बल दो। प्रतिदिन के निम्नकोटि के कार्यों से अपने मानस को ऊपर उठाने का बल दो। तुम अपनी अभिलाषा पर प्रेम के साथ मुझे मेरी शक्ति समर्पण करने का बल दो।

ज्योत्स्ना ने उषा को चाय दिया। बातें करते समय ज्योत्स्ना ने कहा—'यह प्रभात, तुम्हारा साहित्यकार, कितना भला आदमी है ? इतना साधारण परिचय और इतनी गाढ़ी मैत्री ! इसी से लगता है—कह दूँ कि साहित्यकार मानवमात्र का होता है। यही परम सत्य है। कालिदास को देखो। अपना परिचय भी नहीं दिया और हम सबके लिए 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्', 'मेघदूतम्.....' आदि उपहार में दे गया जो मानव के संचित प्रेम के बहते हुए स्वच्छ, दर्द भरे स्रोत हैं। इसी कारण कभी-कभी सोचती हूँ कि 'वाद' के आवरण में वह रहनेवाला नहीं है ! कालिदास को किसी 'वाद' ने कब बाँधा ? वह बँध सका तो केवल मानव के चिर संचित स्नेह से, मनुहार से, टीस से ! वह 'वाद' के बाद भी जीवित रहता है।'

उषा—'वर्डस्वर्थ का प्रभाव तो तुमपर काफी है ! पर मेरा साहित्यकार इतना महान नहीं।'

ज्योत्स्ना—'आज नहीं है। कल वह भी उनकी श्रेणी में आएगा।' तभी प्रभात ने अपने एक परिचित मित्र के साथ कमरे में प्रवेश किया। ज्योत्स्ना उठकर खड़ी हो गयी। पुनः सब बैठ गए। प्रभात ने परिचय दिया—'आप हैं प्रमोद कुमार—हिन्दी साहित्य के एक सफल (?) आलोचक !' ज्योत्स्ना की ओर संकेत करते हुए कहा—'आप हैं ज्योत्स्ना कुमारी—एम० ए० की छात्रा।' उषा को देखते हुए कहा—'यह है उषा—तृतीय वर्ष 'कला' की छात्रा।'

परिचय के बाद काफी शान्ति रही। प्रमोद ने शान्ति भंग करते हुए कहा–'मुझे दुःख है कि मैं उस समय आया जब आप सबों पर अवसाद की छाया पड़ी हुई है। पर यह सत्य का एक अंश है। इस लिए कोई भी इससे अलग नहीं हो सकता। उषा जी के विषय में मैं जानता हूँ। ज्योत्स्ना जी के विषय में मैं नहीं जानता हूँ। पर साहचर्य से यह सुलभ होगा–ऐसी आशा है! यदि नाम की सार्थकता है तो मुझे काफी सन्तोष है।'

प्रभात–'ज्योत्स्ना नाम की सार्थकता का निर्वाह करती है। मैं जानता हूँ इसे। इसने अपनी छाप छोड़ी है–मुझपर! ज्योत्स्ना का अपना संगीत है, व्यक्तित्व है चारित्र्य है। उषा की अपनी ध्वनि है, अपना राग है, अपना स्वर है। अच्छा, आज हम सब 'तात्याटोपी पार्क' में टहलने चलें।'

सब तात्याटोपी पार्क गए। झाँव के पेड़! भिन्न-भिन्न तरह के फूल! वृक्षों की छाया के नीचे बेंच! बेंच पर सब बैठ गए।

प्रमोद ने पूछा–'ज्योत्स्ना जी, आप एम० ए० में क्या पढ़ती हैं?'

ज्योत्स्ना–'हिन्दी।'

प्रमोद–'हिन्दी साहित्य में आप किससे अधिक प्रभावित हैं? पंत, निराला, प्रसाद, यशपाल, जैनेन्द्र, अज्ञेय·····?'

ज्योत्स्ना–'छायावाद' के कवियों से मैं इस अर्थ में प्रभावित हूँ कि उन्होंने नये छन्द दिए हैं। मुक्त छन्द उनकी सबसे बड़ी देन है।'

प्रमोद–'और 'प्रयोगवाद' का धुआँ आपकी आँखों से पानी नहीं गिराता है ?'

प्रभात हँसने लगा। ज्योत्स्ना भी मुस्करा दी। पुनः बोली–'प्रयोगवाद कोई लकड़ी नहीं है कि उससे केवल धुआँ ही निकले या ज्वाला निकले। अगर वह लकड़ी है तो जलाने वाले पर निर्भर है। वह चाहे तो उससे काफी ज्वाला निकल सकती है जो मानव के कल्याण में सहायक होगी। प्रयोगवाद छायावाद के पतन (मैं नहीं मानता, कारण मैं 'वाद' का अनुगामी नहीं !) के बाद आया। कुछ व्यक्ति इसे 'फैशन' कहते हैं। उनकी दृष्टि में 'वाद' एक फैशन है जो जाने के लिए आता है। यह परम सत्य है। पर क्या मैं जान सकती हूँ कि इस मिट्टी पर कौन नहीं जानेवाला है ? सब जायँगे। पर जो छूट जाएगा उसकी कीमत क्या है, वह कितना कल्याण-कारी है यह विचारणीय है। छायावाद का अन्त हुआ। पर क्या उस भाव का भी अन्त हुआ जिसे निराला ने पौरुष और जागरण के गीत में प्रतिष्ठापित किया है ? वह भाव क्या कम श्लाध्य है जिसमें पंत ने प्रकृति के साथ सम्बन्ध जोड़ा है ? 'मुक्तछन्द' क्या हिन्दी साहित्य के लिए एक वरदान नहीं है ? आत्मा का महत्व है। शरीर का कार्य उसे धारण करना है। 'वाद' केवल साहित्यकार का आवरण है जिसके अन्दर कविता या किसी प्रकार का सर्जन उसकी आत्मा है। 'वाद' भी सम्भवतः (जैसा कि मैं समझता हूँ) आलोचकों का उत्पन्न किया हुआ है जिससे वे लेखक या कवि पर प्रहार करते हैं।'

प्रमोद–'और प्रयोग वाद की देन क्या है ?'

ज्योत्स्ना–'उसकी बौद्धिकता और मौलिकता !'

प्रमोद–'क्या बौद्धिकता पाठक के लिए हितकर है ?'

ज्योत्स्ना–'तब मुझे सत्साहित्य की परिभाषा में कुछ जोड़ना पड़ेगा। आज तो पुस्तक के नाम पर अनर्गल साहित्य की रचना हो रही है; जिसे सर्वोदय के विचारानुसार जला देना चाहिए। प्रयोगवाद केवल छायावाद के अन्त से नहीं उत्पन्न हुआ वरन् बीते युद्ध की भीषणता का प्रतिक्रियात्मक रूप भी है। मानव व्यक्ति चिंतन (इनडिविजूअल एप्रोच) पर विश्वास करने लगा है। प्रयोगवाद उसी का पर्याय है। यह साहित्य में एक ऐतिहासिक घटना है जो नए पृष्ठों को जोड़ेगा।

प्रमोद–'क्षमा चाहता हूँ। क्या प्रयोगवाद में साधारणी करण का प्रवेश निषेध है ?'

ज्योत्स्ना–'यही उसका दोष है कि उसमें अभी बौद्धिकता उच्च स्तर की आयी है। उसे साधारण भूमि पर आना होगा। राकेट युग में लोग ज्यादा ऊपर ही उड़ना पसन्द कर रहे हैं।'

प्रमोद–'मुझे प्रयोगवाद से चिढ़ नहीं है। पर मैं उसका कलेवर बदलना चाहता हूँ। यह सम्भवतः हितकर होगा।'

ज्योत्स्ना–'आप आलोचक के स्थान से सब कुछ कर सकते हैं। पर जीवन को भुला कर आलोचक मत बनिएगा !

बनाए गए मानदण्ड पर ही चलना अच्छाई नहीं है, सुधार भी जरूरी होता है।'

प्रमोद–'कोशिश तो ऐसी ही है।'

प्रभात–'प्रमोद को आज कुछ हाथ न लगा। इसमें जीवित 'आलोचक' छटपटा रहा होगा।'

प्रमोद–'आनेवाला युग इसका निर्णय करेगा।'

उषा चुपचाप थी, पर तर्क में भीतर से भाग ले रही थी। प्रभात ज्योत्स्ना के साहित्यिक ज्ञान से काफी प्रभावित हुआ। प्रमोद भी प्रभावित हुआ। पर भीतर से अपनी हार नहीं मानी।

सब घूमते हुए घर लौट आए। प्रभात के घर सब रात में ठहरे। ज्योत्स्ना ने सबको खाना बनाकर खिलाया। प्रभात ने रवि की प्रतिमा पर फूल चढ़ाया। अगरबत्ती जलाई। सब साथ बैठकर गीताञ्जलि पढ़ने लगे–

Let cnly that little be left of me whereby I may name thee my all.

Let only that little be left of my will whereby I may feel on every side, and come to thee in everything and offer to thee my love every moment.

Let only that little be left of me whereby I may never hide thee.

Let only that little of my fetters be left whereby I am bound with thy will, and thy purpose is carried out in my life - and that is the fetter of my love.[1]

---

१. मुझमें उतना ही रहने दो जिससे मैं उन सब में तुम्हारा ही नाम पाऊं। मेरी अभिलाषा में उतना ही छोड़ दो जिससे मैं तुम्हे प्रत्येक दिशा में महसूस करूं, प्रत्येक चीज में तुम तक पहुँचूं और प्रत्येक क्षण तुम्हें अपना प्यार अर्पण करूं। मुझमें उतना ही रहने दो जिससे मैं तुम्हें कहीं भी छिपा न सकूं। मेरे साथ उतना ही बन्धन रखो जिससे मैं तुम्हारी इच्छा के साथ बंधा रहूँ, और तुम्हारा कार्य मेरे जीवन द्वारा ढोया जाता है और वही मेरे प्रेम का बन्धन है।

प्रभात

प्रभात को भारत सरकार से विदेश जाने का निवेदन हुआ। प्रथमतः वह तैयार नहीं हुआ। पर ज्योत्स्ना के यह कहने पर कि हिन्दी के प्रचार की दृष्टि से यह भ्रमण हितकर होगा, तैयार हो गया। चला भी गया। वह अध्यक्ष हो गया।

उषा को प्रभात के प्रवास से काफी धक्का लगा। व्यक्तित्व का अभाव उसे अखरने लगा। पर क्या करती? ज्योत्स्ना के साहचर्य में मन कुछ हल्का रहता तो भी उषा शान्त नहीं रहती। पन्द्रह दिन हो गए। एक भी पत्र नही आया। उषा घबरा गयी। अन्त में 'हिन्दी भाषा प्रकाशन गृह न्यूयार्क' के प्रधान कार्यालय के पते पर पत्र लिखा—

मेरे साहित्यकार,

तुम भी नहीं भूले होगे : पन्द्रह दिन हुए—तुम्हारी कविता सुने, तुम्हारी छाया में बैठे, तुम्हारे घर का पानी पिए और तुम्हारे पैर छूए। हाँ, पन्द्रह दिन हुए तुमको देखे।

सागर की नीरवता ने तुमको कितना नीरव बना दिया? डर है—कहीं भूल तो नहीं गए? मन कहता है 'नहीं भूलेगा।' आत्मा कहती है : 'भूल जाएगा। उसे सबको याद रखना है। याद रखो, वह साहित्यकार है।' मैं सिर पीटने लगती हूँ।

मैं कब चाहती हूँ कि मुझे ही याद रखो ? पर पहले मुझे याद रखो क्योंकि मैं ही पहले तुम्हारे जीवन में आयी हूँ। मैं दबाव नहीं डालती। जैसा चाहो, करो। प्यार स्वच्छन्दता में ही पनपता है। क्या तुम्हारी लेखनी कभी मेरे लिए कुछ निशान कागज पर बनाएगी ?

तुम्हारी,

उषा।

पत्र लेकर डाकखाने में डाल आयी। रास्ते में खादी भण्डार के सामने ज्योत्स्ना मिली। ज्योत्स्ना ने बताया कि मेरे घर से पत्र आया है। इसलिए मैं काशी चली जाऊँगी। उषा सुनकर उदास हो गयी। ज्योत्स्ना ने उसे समझाया। खींचकर उसे फूल बाग में ले गयी।

ज्योत्स्ना ने कहा—'साहित्यकार नहीं है। वह रहता तो तुम्हें कोई उदासी नहीं होती। पर मैं भी क्या करूँ ? असमर्थता है। साहित्यकार से मिलना चाहती थी। हाँ, तुम साहित्यकार को अपने से बाँधकर कभी मत रखना। इतना लोभ न करना। उसका जीवन महान है। वह सबके लिए आया है। उसके जीवन का कुछ 'मिशन' है। उसे संकुचित मत होने देना। अगर वह मानव-हित की बातें सोचता हुआ कहीं पानी में डूबने लगे तो बचा लेना। पर मानव-कल्याण करते समय यदि तुम्हें भूला दे तो बुरा न मानना। उससे तुम अमर हो जाओगी। केवल स्त्री मत रहना। उसके लिए वरदान हो जाना, प्रेरणा हो जाना,

श्रद्धा हो जाना ! तब देखना वह किस तरह हमारे रवीन्द्र की तरह, तुलसी की तरह घर-घर पूजा जायगा। वासना की बूत न होना। साहित्यकार को, संसार को सँवारने देना। उसे समाज के स्तर को उच्च करने में मदद देना। कहते-कहते ज्योत्स्ना की आँखो से आँसू गिरने लगे। उषा निर्वाक् उसकी तरफ देख रही थी। वह समझ न पायी कि यह नारी का कौन सा रूप है? नारी पुरुप के साहचर्य की भिक्षुणी होती है। और यह पुरुप के पौरूष का गान कर कर रही है? यह उसकी कुण्ठा तो नही है? या वंचना का आवरण? प्रत्यक्षत: कुछ नहीं बोली—

ज्योत्स्ना बोली:—'मुझे दुःख है कि अन्तिम समय में उससे न मिल सकी। पर मेरा प्रणाम कह देना उस आत्मा को जो सबके हित की बातें सोचती हैं, जो संसार का सुन्दर बनाते हुए चली जाएगी।'

ज्योत्स्ना उतना कहकर चली गयी। उषा बैठी सिसकती रही।

ज्योत्स्ना रात की गाड़ी से काशी चली गयी। उषा उसे स्टेशन तक छोड़ने गयी। ज्योत्स्ना चली गयी पर कहती गयी—'साहित्यकार' आएगा तो कहना कि ज्योत्स्ना तुम्हारे पैरों की धूलि के लिए बेचैन थी। आज एक आशा लेकर जा रही है कि कभी तुमसे वह अवश्य मिलेगी। उषा उदासी लिए लौट आयी।

कॉलेज में उषा का मन न लगा। प्रभात की याद सताने लगी। वह एक खाली कमरे में जाकर पत्र लिखने लगी :

मेरे साहित्यकार,

याद है, दो पत्र मैं तुम्हारे नाम लिख चुकी हूँ। यह तीसरा पत्र है!

प्रतिदिन कॉलेज जाती हूँ। पर मन भाग जाता है—वहाँ, जहाँ तुम हो। डाकखाने में रोज जाती हूँ। पर तुम्हारा एक भी पत्र नहीं आया।

आज एक किताब पड़ी थी टेबुल पर। टी० एस० इलियट की लिखी हुई थी। उसमें लिखा था:—

'I said to my soul, be still, and wait without hope, For hope would be the hope of the wrong thing.

Wait without love for love, would be the love of the wrong thing. There is yet faith!

But the hope and the love and the faith are all in the waiting.'[1]

तुम थे तब कितनी शान्ति थी? आज नहीं हो तो कितनी बेचैनी है? कितनी तड़पन है? क्या अन्ततः यह भावना नहीं

---

१ मैंने अपनी आत्मा से कहा, 'शान्त रहो और बिना आशा की प्रतीक्षा करो। क्योंकि वह आशा असत् की आशा होगी। बिना प्यार की प्रतीक्षा करो क्योंकि वह प्यार असत् का प्यार होगा। तो भी विश्वास है! पर आशा, प्यार और विश्वास सब प्रतीक्षा में ही हैं'—'अनुवाद अज्ञेय'जी के 'नदी के द्वीप' से लिया गया है।

है ? आज ही अगर मान लिया जाए कि यह एक कमजोरी है जो जीवन के सारे आनन्द को मिटाना चाहती है, तो क्या उस कमजोरी से अलग नहीं हुआ जा सकता है ? अलग नहीं होना तो उस भावना से आसक्त होना है ? पुनः, यह आसक्ति उचित है ? कदापि नहीं। तर्क तो यहाँ तक पहुँचा देता है ? पर मन ? वह तो तुम्हारी ही तरफ खीचे जा रहा है—खींचे जा रहा है ... वैज्ञानिक कहता है : आँख सीधी देखती है। और मन ? वह भी तो सीधा खींचता है !

यह सत्य है कि प्यार को, सहानुभूति को, सद्भावना को पत्र की लम्बाई-चौड़ाई में नहीं बाँधा जा सकता। हम दोनों का प्यार ऐसा नहीं था जिसकी गहराई कलम की नोक पर ही उतारी जाए। महान् पुरुषों की बातें मैं नहीं जानती। मैं स्वयं साधारण हूँ। हाँ, भावुक हूँ। रोना आता है, सिसकना आता है। उनसे परे कुछ नहीं आता। तुम कविता रचते हो। उसी के प्रभाव में और तुम्हारी याद में कभी-कभी एक दो पंक्ति लिख लेती हूँ। छन्द का मुझे ज्ञान नहीं है। मैं दर्द की सगी हूँ। भावना का ज्ञान है।

यदि समझती कि सागर की लहरें तुमको बहुत दूर तक फेंक देंगी तो उनके वक्ष में अपने को फेंक देती।

तुम्हारी,

उषा।

ज्योत्स्ना

ज्योत्स्ना सुबह साढ़े ६ बजे बनारस कैन्ट स्टेशन पर पहुँची। रिक्शा से घर आयी। पिता जी के पैर को छुआ। परिवार में प्रसन्नता छा गयी। सखियाँ आयीं, समाचार पूछकर चली गयीं। सबकी समझ में आ गया कि ज्योत्स्ना प्रभात से काफी प्रभावित है। ज्योत्स्ना ने भी इसे सहर्ष स्वीकार कर लिया। दिन जाने लगे।

× × × ×

बहुत दिन हुए, प्रभात का पत्र नहीं मिला। उषा ने भी नहीं लिखा। प्रमोद तो केवल 'आलोचक' था, आदमी कम था। ज्योत्स्ना सोचती—'जब प्रभात था, तब कितना समझाता था, दुलराता था, पुचकारता था ? और आज ? आज क्या हो गया ? क्या पत्र लिखने से मर्यादा भंग हो जाती है ? मर्यादा है क्या अन्ततः ? हम हैं तभी न मर्यादा है, आदर्श हैं ? मर्यादा क्या ऐसी है जो जीवन की कमर ही तोड़ दे ? विचारों की आँधी इतनी तेज हुई कि उसे लिखना ही पड़ा :

उषा के साहित्यकार,

ऊपर की पंक्ति तुम्हें चोट पहुँचाएगी या नहीं—मैं ठीक-ठीक नहीं कह सकती। मैंने ही एक बार उषा से कहा था—'उषा,

साहित्यकार गवश होता है।' पर आज लिखते समय मालूम हुआ कि तुम उषा से ही अधिक सम्बद्ध हो। पर विचित्रता तो इसमें है कि उषा के नाम भी तुम पत्र नहीं लिखते। उषा कितनी बेचैन है? यदि तुम समझ पाते……।

अपनी बात कहूँ। अपनी बात? अपने मन की बात या अपने हृदय की बात? अपनी आत्मा की बात कहूँ? सुनो। तुम्हारे जाने के बाद मैं यहां शीघ्र ही आ गयी। उषा से अलग हो गयी—जिसने मुझे तुम्हारे जैसे साहित्यकार से मिलने का अवसर दिया। प्रतिदिन विश्वनाथ मन्दिर में जाती हूँ। हजारों की भीड़ रहती है। मैं भी खड़ी रहती हूँ। सब बेचैन! अपने आराध्यदेव के चरणों पर फूल चढ़ाने के लिए बेचैन! और आराध्यदेव? मौन, निस्तब्ध, निस्पन्द!!! अभागा आराध्यदेव!! युगों का निर्मम, निस्तेज, प्राणहीन पाषाण बोले भी तो क्या बोले? लकीर पड़ती भी है तो खुरचने से! वेदना का, प्यार का, भावना का कोई चिन्ह ही नहीं रहता!!!

चली आती हूँ घर! तब रवि की प्रतिभा की तरफ बढ़ती हूँ, फूल चढ़ाती हूँ। तुम उन्हें पूजते थे। उसी का अनुकरण कर रही हूँ। पर वह भाव, जिसको लेकर तुम उनके आगे जाते थे मैं कहाँ से लाऊँ? तो भी मन कहता है—'तुम्हें पूजने का ढंग मालूम हो गया है।'

मैं बाँसो उछलने लगती हूँ। सोचती हूँ—'पूजने का ढंग मालूम हो गया तो आराध्यदेव एक न एक दिन अवश्य मुखर होगा। नहीं मुखर हो, न सही। प्रतिमा तो कोई नहीं उठा ले

जाएगा ? जब फूल तमाम हो जाएँगे तो अपने को नोंच-नोंच कर, काट-काट कर चढ़ा दूँगी। तब देखूँगी प्रतिमा मुखर होती है या नहीं !

कैसे कहूँ प्रभात कि रवि की प्रतिमा में, दुनिया की प्रत्येक प्रतिमा में मैं तुम्हारी भी छाया देखती हूँ ? तुम भी तो साहित्य-कार ही हो ! अच्छे फूल नहीं, पंखुड़ियाँ तो रख जाते हो ! क्या तुम उनकी परम्परा में कुछ जोड़ नहीं जाते हो ?

तुमने मेरी बाँह पकड़ कर बैठाया था। उसी बाँह को पकड़ कर कभी कभी ललाट पर मार लेती हूँ। भावना में तो तुम सब कुछ स्पर्श कर गए हो ! कुछ भी स्पर्श से परे है ? नहीं। और व्यवहार में ? मुझसे मत कहलाओ !

उषा के नाम पत्र जरूर लिखना। वह नहीं सह सकती। उसे तुम स्नेह दो। विदा।

तुम्हारी,

ज्योत्स्ना (यदि मानते हो !)

ज्योत्स्ना का प्रमोद के नाम पत्र :

प्रमोद जी,

मेरा और आप का परिचय चैत्र फाल्गुन के बिखरते बादलों की तरह और नील गगन के इन्द्र धनुष के समान है। बादल घिरते हैं। कुछ के देखने के पहले ही बिखर जाते हैं। मैं समझती हूँ : हम दोनों का परिचय उस तरह बिखरा भी होगा

तो कहीं कहीं दो चार बून्दें बरसाकर। इन्द्र धनुष की बात! स्रष्टा की सारी रंगीनियाँ भरे आता है नील-गगन में!! अब यह आप पर निर्भर है कि आप इस परिच्छेद का रूप क्या देना चाहते हैं।

आपका परिचय प्रभात से बहुत पहले का है। आप उनकी गतिविधि जानते हैं। आलोचक होने के नाते उनकी साहित्यिक गहराई भी! इसलिए आप से आज कुछ कहना है।

प्रभात के प्रवास से सबको चोट लगी। आपको भी कुछ दर्द जरूर हुआ होगा। पर सबसे अधिक दर्द है उषा को! वह अनजान में ही उसे अपने को समर्पण कर बैठी थी। आप प्रभात को पत्र लिखकर पूछिए कि पत्र नहीं लिखने का कारण क्या है। शायद जवाब मिले।

आपकी,

ज्योत्स्ना।

ज्योत्स्ना का उषा के नाम पत्र :

मेरी उषा,

तुम्हारे नाम यह प्रथम पत्र है। आए हुए भी तो आठ दिन ही हुए? इसलिए क्षमा की अधिकारिणी हूँ। तुम्हारे साहित्य-कार के नाम एक पत्र आज लिखा। उनसे निवेदन किया है कि वे शीघ्र ही तुम्हारे नाम पत्र लिखें। जबसे तुमसे अलग हुई मन खिन्न रहता है। तुम मन लगाकर पढ़ना। साहित्य-

कार पत्र नहीं भेजे तो घबराना नहीं। तुमने प्यार किया। वह हो गया। प्रतिकार की भावना गलत है। पथिक अगर रास्ते में प्यासा मिले तो उसकी प्यास बुझाओ।

विशेष क्या लिखूं ? जीना है इसलिए जी रही हूं। वैसे कोई चाह नहीं है।

तुम्हारी,
ज्योत्स्ना।

पत्रों को लेकर छोड़ने गयी—विशेश्वर गंज। वहीं नागरी प्रचारिणी सभा है। उसमें पत्रिका देखने लगी। 'अमेरिकन रिपोर्टर' की एक प्रति पड़ी थी। पढ़ा। बड़े अक्षरों में लिखा था—

'न्यूयार्क में भारत का साहित्यिक मण्डल'

भव्य स्वागत ·····

राष्ट्रपति आइजनहावर मिले······

विशेष—न्यूयार्क······।

आज सन्ध्या पाँच बजे भारत से एक साहित्यिक मण्डल यहाँ पहुँचा। हवाई अड्डे पर राष्ट्रपति एवं अन्य सम्मानित व्यक्ति उपस्थित थे। न्यूयार्क स्थित भारत के राजदूत भी उपस्थित थे। परिचय के बाद सब सदस्य विदेशी भाषा प्रकाशन गृह-न्यूयार्क के अतिथि गृह में ठहरने चले गए।

······न्यूयार्क······।

कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय के प्राँगण में भारत के साहित्यिक मण्डल ने अपनी आयोजना रखी। भीड़ काफी थी।

हिन्दी भाषा के जाननेवाले बड़ी संख्या में आए थे। सभा काफी अच्छी रही। प्रभात कुमार की कविता ने सब में जान डाल दी। यह मंडल यहाँ पर एक महीना रहेगा। ज्योत्स्ना खुशी से नाच उठी। घर आयी। पिता जी के पैर छूकर दौड़ी गयी। फूलों को तोड़ रवि की प्रतिमा पर चढ़ाई। खुशी से उसकी आँखों मे आँसू भर आए।

प्रमाद

प्रमोद का घर बनारस में ही था। पर उसका जीवन इला-हाबाद में अधिक व्यतीत हुआ था। इसलिए बनारस की गति-विधि से परिचित नहीं था।

प्रभात तथा प्रमोद की माध्यमिक (उच्चतर) शिक्षा साथ-साथ इलाहाबाद में ही हुई। बाद में दोनों अलग हो गए। प्रमोद आलोचक हो गया। प्रभात साहित्यकार हो गया। प्रमोद आलोचक होते हुए भी प्रभात से अन्यमनस्क नहीं रहता था।

प्राय: देखा जाता है कि साहित्यकार और आलोचक में समझौता कम होता है। यद्यपि यह दोनों की कमजोरी को हमारे सामने रखता है तो भी युग की या वैयक्तिक द्वेष की भावना उन्हें कुछ नीचे स्तर पर ला देती है। इन सबसे परे मानवीय गुणों के आधिक्य ने, नहीं मिलने वाले दो व्यक्तियों को मिला दिया था। प्रमोद इलाहाबाद में रहता था। विश्वविद्यालय की पुस्तकों की आलोचना में उसका समय अधिक व्यतीत होता था। पत्रिकाओं में भी उसके लेख प्रकाशित होते थे। इलाहाबाद के साहित्यक परिषद का सदस्य था।

प्रभात द्वारा ज्योत्स्ना का परिचय उसे प्राप्त हुआ। ज्यो-त्स्ना के प्रति एक विचार सूत्र उसके हृदय में आ गया था:—

'ज्योत्स्ना अन्ततः भावुक है पर आसक्ति उसे छू भी नहीं गयी है।'

वाक्य के अन्तिम शब्द उसे सचेत कर देते नहीं तो वह कुछ कह देता ज्योत्स्ना से। दूसरी बात यह भी कि वह साहित्यकार को पूजती है।

तब क्या लेकर और क्या पाने के लिए हाथ बढ़ाया जाए—उसके सामने ? यह प्रभात के प्रति भी तो विश्वासघात होगा ? ज्योत्स्ना के प्रति ? प्रमोद कितना भी लालची क्यों न हो किसी भी अर्थ में, यह मानने को तैयार नहीं रहता था कि बन्दर के हाथ में शीशा देना चाहिए। समझता था कि ज्योत्स्ना एक ही दृष्टि में जो दो देख जाती है वह समझ के परे हो जाता है। पर कानपुर के सहज सौजन्य में अपनापन दीख पड़ा।

डाकिए ने आवाज लगायी। प्रमोद बाहर आया। कार्ड देखा तो ज्योत्स्ना का नाम लिखा हुआ पाया। पत्र पढ़ने पर दो बातें उसके दिमाग में घूमने लगी: मेरा और आपका परिचय चैत्र-फाल्गुन के बिखरते बादलों की तरह और नील गगन के इन्द्र धनुप के समान है।......मैं समझती हूँ, हम दोनों का परिचय उस तरह बिखरा भी होगा तो कहीं-कहीं दो चार बून्दें बरसाकर।

इन्द्र धनुष की बात! स्रष्टा की सारी रंगीनियाँ भरे आता है—नील गगन में !!

तभी दरवाजे पर खटखटाहट हुई। 'कौन है भाई ?' कहते हुए प्रमोद बाहर आया। दरवाजा खोला तो साहित्य परिषद के

पाँच सदस्यों को उपस्थित पाया। उसके चेहरे को देखकर उन सबों ने कहा—'आज हमारा आलोचक तो स्वयं आलोचना का कवि हो गया है ?'

प्रमोद—'स्वीकारता हूँ। बताओ, बात क्या है ?'

सदस्य—'हमने अभी एक 'चेरिटी शो' दिखाने का निश्चय किया है। हम चाहते हैं रवि लिखित 'चित्रा' खेलना। उसका हिन्दी अनुवाद हमें प्राप्त हो गया है। तुम अर्जुन की भूमिका तैयार करो। चित्रा की भूमिका के लिए हिन्दू-विश्वविद्यालय की छात्रा सुश्री ज्योत्स्ना कुमारीजी वर्मा को सूचित किया था। उन्होंने स्वीकृति दे दी है। उनका हमसे निकट सम्बन्ध है। बसन्त और मदन की भूमिका के लिए यहाँ के दो छात्र तैयारी कर रहे हैं।'

ज्योत्स्ना का नाम सुनकर प्रमोद चौंक गया। वह सोचने लगा—'ज्योत्स्ना ? बनारस की ? तात्याटोपी पार्क की ? या प्रभात की ? या उषा की सखि ? या विश्वविद्यालय की छात्रा ?'

प्रमोद ने सदस्यों को बताया कि उसका परिचय ज्योत्स्ना से है। यह सुनकर सबको खुशी हुए। सदस्य चले गए। प्रमोद हाथ-मुँह धोकर नास्ता करने को तैयार हुआ तभी एक लड़का एक कार्ड लेकर आया। वह प्रभात का पत्र था।

प्रभात का पत्र प्रमोद के नाम :

प्रमोद,

आज तुम्हारे नाम पत्र लिख रहा हूँ। यह न समझना कि तुम्हारी सहानुभूति मेरे हृदय से मिट गयी है। तुम्हारे नाम

पत्र लिखने के पहले किसी के भी नाम पत्र नहीं लिखा है। स्पष्ट लिख देता हूँ। नहीं तो तुम्हारी लेखनी उठने लगेगी। अन्ततः आलोचक ही तो हो !

उषा के तीन पत्र मेरे नाम आ चुके हैं। ज्योत्स्ना का कोई पत्र नहीं आया। मुझे उससे कोई शिकायत नहीं है। वह भी गतिशील है। गिरती नहीं। गिरती भी है तो धूल नहीं लगने देती।

उषा को मैंने समझाया था : 'उषा, अन्ततः मैं साहित्यकार हूँ। अपने में आसक्ति न लाओ। अपने से न बांधो।' तुम कहोगी : यह साहित्यकार की कमजोरी है। जब वह एक नारी को छाया नहीं दे सकता तब वह मानवमात्र के सुख की कल्पना उससे कैसे सम्बद्ध हो सकती है ? ऐसा न सोचो। तुममें आसक्ति आ सकती है। तुम अपना प्रेम विश्वमय कर दो।'

क्या लिखना था, क्या लिख गया ? यह भी आवश्यक ही समझो। उषा के नाम पत्र लिख दिया है। ज्योत्स्ना का पता नहीं मालूम था। इसलिए उसे पत्र न लिख सका। तुमसे भेंट हो तो कह देना मैं उससे एक बार मिलना चाहता हूँ। उसके व्यक्तित्व में असाधारण आकर्षण है। उसमें प्रतिभा भी है। उससे प्रकाश फैलेगा।

तुम अपना कार्य करना। साहित्य की सेवा में लगे रहना। आलोचक भी एक प्रकाश स्तम्भ होता है !

तुम्हारा,

प्रभात।

प्रमोद ने पत्र की एक पंक्ति को बार-बार पढ़ा—'उसके व्यक्तित्व में असाधारण आकर्षण पाता हूँ।'

नास्ता करके वह नाटक का हिन्दी रुपान्तर देखने लगा। भावानुवाद हुआ था।

बाहर घूमने चला गया। लौट कर आया तो बाहर बल्ब लगाकर उषा को पत्र लिखने लगा :

उषा के नाम प्रमोद का पत्र

उषा जी,

मेरा—आपका परिचय तो ऐसा है कि उसका सहारा लेकर भी कुछ नहीं पा सकता। हाँ, पत्र में ऐसी बात है कि आप मुझे धन्यवाद दिए बिना न रहेंगी। प्रभात ने, क्षमा करें आपके साहित्यकार ने आपके नाम पत्र लिख दिया है।

प्रभात आपको कैसे भूलेगा ? क्या खाकर भूलेगा ? मेरे पत्र में जो कुछ लिखा है उसी के आधार पर समझ गया हूँ। निवेदन है कि अब घबराएंगी नहीं।

आपका,
प्रमोद।

ज्योत्स्ना के नाम प्रमोद का पत्र :

ज्योत्स्ना जी,

आपके प्रभात जी की चिट्ठी आज मिली है। वह पत्र नहीं है। प्रभात की आत्मा का 'कनफेशन' है ! सम्भव है आप इस पत्र को प्राप्त करने के पहले ही इलाहाबाद छोड़ दें। भूली न

होंगी तो आपको यहाँ अगले रविवार को रवीन्द्र-स्मारक-निधि के लिए यहाँ की साहित्य-परिषद की ओर से 'चित्रा' नाटक में चित्रा का अभिनय करना है। आप वृहस्पतिवार को सन्ध्या-समय आ जाएं। लीडर प्रेस के निकट ही मेरा मकान है। प्लेट लगी है: 'प्रमोद कुमार वर्मा।'

आपका,
प्रमोद।

प्रभात के नाम प्रमोद का पत्र

प्रभात,

तुम्हारा पत्र मिला। पढ़ा, दो बार पढ़ा। बहुत तरह के विचार मडराने लगे। बहुत विचार बिखर गए। जो मडराने लगे वे इस पत्र में भी मडराते मिलेंगे।

आज डाकिए ने पत्र दिया। यह ज्योत्स्ना का पत्र था। उस ज्योत्स्ना का यह पत्र था जिसमें तुम असाधारण आकर्षण पाते हो! हाँ, उसी का यह पत्र था। किसी भी तरह देखता हूँ तो उसी का मालूम होता है। इसमें कोई दर्शन नहीं है। ज्योत्स्ना कानपुर से आ गयी है। इसीलिए कह रहा था कि ज्योत्स्ना विश्वविद्यालय की छात्रा तो नहीं हो गयी? पर बनारस भी तो कवियों की भूमि है। ज्योत्स्ना भी अस्तमित नहीं होगी।

कुछ भी हो, उन बरसाती जुगनूओं के पीछे-पीछे न दौड़ो। दुनिया तुम्हारे पीछे दौड़ती है, दौड़ेगी। और तुम हो कि उषा, ज्योत्स्ना दिन रात रटा करते हो। तुम्हारा अपना अस्तित्व है।

अपनी राह है। अपना पाथेय है। अपने विचार हैं। तो इन मौसमी तितलियों के पीछे भागने से क्या लाभ ? तितलियों को देखते हो ? हम पकड़ने के लिए दौड़ते हैं। वे भाग जाती हैं। कभी-कभी पकड़ते ही टूट जाती हैं। जो पकड़ते ही टूट जाए उसे पाला कैसे जा सकता है ? उसे बाँध कर दाना चुगाना असम्भव है।

पहले की बात ! तुम बहुत दृढ़ रहते थे। पर अब मेरी दृष्टि में कुछ 'बहक' रहे हो। सम्भव है यह मेरी दृष्टि का ही दोष हो। तो भी कहूँगा जहाँ तक हो सके—ऐसी उलट-पलट से दूर रहो। तुम्हारे साथ जो मर्यादा बँध गयी है उसे अपने ही हाथों बहा मत दो। ऐसा न हो कि आनेवाला युग कहे कि 'साहित्यकार' की संज्ञा तुम्हारे लिए उपयुक्त नहीं थी।

ज्योत्स्ना तथा उषा को सूचित कर रहा हूँ। विशेष कोई बात नहीं है। ईमानदारी तथा परिश्रम से अपना काम करना। नियति से अधिक प्रयत्न तथा चेष्टा के प्रति पक्षपात करना।

तुम्हारा,

प्रमोद।

नौकर पत्र डाकखाने में छोड़ आया।

\+ + + +

ज्योत्स्ना शुक्रवार को सुबह की गाड़ी से आयी। वह प्रमोद के निवास स्थान पर पहुँच गयी। दरवाजा खटखटाने पर बाहर आया और ज्योत्स्ना को देखकर कहा—'ज्योत्स्ना जी ? नमस्ते।

आइए। मैंने सोचा कि इतना प्रकाश कमरे में कहाँ से आया ? पर यहाँ तो स्वयं ज्योत्स्ना के पैर पड़ गए !'

ज्योत्स्ना अन्दर कुर्सी पर बैठते हुए हंसने लगी।

पुनः बोली—'प्रभातजी का पत्र आया है ?'

प्रमोद—'मैंने तो आपको इसकी सूचना दे दी थी ? अच्छा, मैं आपको पत्र देता हूँ।'

प्रमोद ने पत्र ज्योत्स्ना को दे दिया। ज्योत्स्ना एक ही दृष्टि में सब देख गयी। प्रमोद ज्योत्स्ना के ललाट पर उठती हुई रेखाओं को गिनता रहा।

ज्योत्स्ना को वैसे तो बहुत स्थल मर्मान्तिक लगे। पर 'वह भी गतिशील है। गिरती नहीं,' ये स्थल उसे बहुत वेदनामय लगे।

वह बहुत दिनों तक प्रभात के साथ नहीं रही। तो प्रभात उसे इस हद तक कैसे समझ गया ? एक स्थल और उसे सोचने को बाध्य करने लगा : 'गिरती भी है तो धूल नही लगने देती।' ज्योत्स्ना सोचने लगी : 'मैं उसके सामने नहीं गिरी या गिरकर भी धूल नहीं लगने दी।' इसीलिए वह समझ गया कि कहीं भी धूल नहीं लगती ? या यह समझ गया कि ज्योत्स्ना जो मेरे सामने है वही परोक्ष में भी है ? इतना विश्वास ?

'क्या सोच रही हैं आप ?' कहते हुए प्रमोद ने ज्योत्स्ना का मौन भंग किया। प्रमोद ने कहा—'यह पत्र प्रभात की आत्मा

का 'कनुफेशन' नहीं है। कवि या लेखक की भूमिका लम्बी-चौड़ी होती है। सच्चाई तो ईश्वर जानता है।'

ज्योत्स्ना–'मैं भी जानती हूँ। प्रभात ऐसा साहित्यकार नहीं है कि दूसरे की आँख में धूल डाल कर स्वयं प्रिय बना रहे। वह जो कुछ कहता है करने के लिए कहता है। मुझे दुःख है कि इतने दिनों तक साथ रहते हुए भी आप उसकी गतिविधि को नहीं समझ सके। सम्भव है, आपके अन्दर के 'आलोचक' ने आपको लेखक से द्वेष करना ही सिखाया हो।' पर यह दृष्टिकोण कल्याणकारी नहीं है।'

ज्योत्स्ना कहते हुए स्नानागार में चली गयी।

स्नानागार में कुल्ली करके मुँह धोने लगी। पानी के गिरने की आवाज बाहर आ रही थी। प्रमोद स्नानागार के दरवाजे तक चला गया। दीवार का सहारा लेकर खड़ा हो गया। ज्योत्स्ना के सिर की साड़ी गिर पड़ी थी। कमर में लपेटे हुए कुल्ली कर रही थी। पुनः बैठकर कुल्ली करने लगी। प्रमोद दरवाजे के आगे बैठ गया। ज्योत्स्ना कुछ देर तक हथेलियों से आँखें दबाए रही। प्रमोद लौट गया। प्रमोद ने अपना बिस्तर नीचे लगा दिया–फर्श पर। ज्योत्स्ना के लिए नया बिस्तर–मँगवाया। पर ज्योत्स्ना ने यह कहकर टाल दिया कि मुझे गर्मी में नीचे ही सोने की आदत है। बिस्तर पर बैठकर बैग से कुछ पत्र-पत्रिकाएँ और कुछ किताबें–जैनेन्द्र का 'त्याग-पत्र', रवि की 'चित्रा' निकाल कर देखने लगी। पर मन स्थिर न होता था। उसे वह पत्र याद आया जिसमें उसने लिखा था : 'उषा के

साहित्यकार'। प्रभात ने लिखा है : 'ज्योत्स्ना से जीवन में एक बार मिलना चाहता हूँ।' क्या यही सुनने के लिए कि वह उषा का साहित्यकार है ? मुझे तो अब ऐसा आभास हो रहा है कि उषा की आड़ में वह मेरी ही पूजा करता था। या यह भी गलत है ? सम्भव है, वह उषा में, मुझमें विराट् विश्व को देख रहा हो ! अन्तिम वाक्य पर स्वयं आश्चर्य करने लगी। अब उसे विश्वास होने लगा कि वास्तविक बात यही है। प्रभात जानता है, मैं दृढ हूँ। चल सकती हूँ। इसलिए चाहता होगा कि मिलकर कुछ दे दूँ जिससे ज्योत्स्ना भी आगे आ जाए। तकिए को छाती से लगाकर वह बिस्तर पर सीधे पड़ गयी। प्रमोद चाय लाने भीतर चला गया था। चाय लेकर प्रमोद आया। एक कुर्सी निकट लाकर बैठ गया। ज्योत्स्ना बिस्तर पर बैठे-बैठे चाय पीने लगी। प्रमोद ने कहा—'मुझे दुःख है कि मैंने आपको मानसिक कष्ट दिया।'

ज्योत्स्ना ने कहा—'मुझे कोई कष्ट नहीं है।' प्रमोद ने चाय ढालते हुए कहा—'मैं नहीं समझता था कि आप प्रभात के प्रति इतना पक्षपात कर सकती है। मेरे कहने का अर्थ यह भी है कि जो महान है, उसे आगे बढ़ने का अवसर देना चाहिए। अपने आनन्द के लिए दूसरे का व्यक्तित्व ही नही माँग लेना चाहिए।'

ज्योत्स्ना ने चाय की प्याली फर्श पर रख दी। दैनिक पत्र को हाथ में लेते हुए बोली—'भविष्य में भी मुझसे ऐसी भूल न होगी। भूत और वर्तमान तो आप से छिपे नहीं हैं। मै किस कारण प्रभात से प्रभावित हूँ—यह आप नहीं जानते।'

प्रभात आज के 'प्रयोगवाद' के युग में भी साहित्य में गंभीर वातावरण का सर्जन कर रहा है। वह 'कला कला के लिए' का समर्थक नहीं है। वह 'कला जीवन के लिए' का समर्थक है। 'प्रयोगवाद' या 'नयी कविता' के युग को वह ओछा नहीं समझता और न ही वह 'प्रयोगवाद' से अलग ही है। वह 'प्रयोगवाद' और 'नयी कविता' का कवि है। पर वह यह नहीं मानता कि 'प्रयोगवाद' में 'छिछालेदर' भी कविता के नाम पर हो। यह नितान्त त्याज्य है। पानी में बहकर आने वाले को वह कवि या लेखक नहीं मानता। वह तो उनको कवि या लेखक मान सकता है जो महाप्रलय के अवसर पर भी पानी पर नाव चलाते हैं और डूबते हुए की जान बचाते हैं। वह जानता है कि कोई भी 'वाद' खराब नहीं होता। खराब होती है उसके प्रति संकुचित वृत्ति। खराब है पुराने आलोचक की पुरानी दृष्टि, जो नए युग के अनुसार अपने चश्मे के शीशे को नहीं बदलता। और सब से समर्थ वास्तविकता तो यह है कि मौलिकता के डर से आलोचक घबरा जाता है।

उसकी खोदी हुई नीव कमजोर होने लगती है। पर समझना चाहिए कि 'सर्जक' की मृत्यु नहीं होती। कवि 'वाद' का गुलाम नहीं है। कवि मानव-कल्याण के लिए स्वतंत्र है। वह पहले धरती का है, बाद में आकाश का है, बाद में 'वाद' का है, बाद में आलोचक का शिकार है।

प्रमोद—'तो क्या 'प्रयोगवाद' या 'नयी कविता' का पतन 'छायावाद' के सदृश नहीं होगा ?'

ज्योत्स्ना–'और आपके 'आलोचक' का अन्त नहीं होगा ? 'छायावाद' में पौरुष और जागरण के जो गीत 'निराला' ने गाए; पंत ने प्रकृति से सम्बन्ध जोड़ने का जो रास्ता दिखाया, महादेवी वर्मा ने जो करुणा और आह्लाद की धारा बहायी···· वह मरेगा ? 'निराला' का वह 'तुलसी दास' देखो।

भारत के नभ का प्रभापूर्य
शीतलच्छाय सांस्कृतिक सूर्य
अस्तमित आज रे–तमस्तूर्य दिङ्मंडल;

क्या आज भारत का सूर्य अस्तमित नहीं है–सांस्कृतिक सूर्य ? भारत में आज ईमान बेचा जाता है या नहीं ? मैं पूछती हूँ, जीवन छन्द लेकर चलेगा या तथ्य लेकर ? तुलसीदास के 'रामचरित मानस' मे आज-से छन्द नहीं हैं। तो क्या उससे अधिक किसी काव्य को पढ़ा जाता है। मानती हूँ कि काव्य में छन्द एक दुर्निवार अंश है। पर वह काव्य, जो केवल छन्द की ही विवेचना करे किसके द्वारा पढ़ा जाएगा। और उस आलो-चक को क्या कहूँ जो जीवन के पहलू पर काव्य को न देखकर शास्त्र के नियम से उसे निकृष्टतम बताने लगता है ? प्रमोद जी, अपने में जीवित आलोचक से कहिए कि वह अपने चश्मे के शीशे को बदले या साफ पानी से अपनी आँखों की मैल को धो डाले। अन्यथा आनेवाला युग कुत्सित साहित्य को पाकर आप 'आलोचकों' को ही दोषी ठहराएगा। 'छायावाद' के आलोचक दोषी ठहराए गए हैं।'

प्रमोद—'अच्छा, आज मैं सोचूँगा। देखूँगा कि जो नया क्षितिज, साहित्य का निकला है उसके सूर्य में कितनो प्रभा है।'

ज्योत्स्ना—'सूर्य के सभी रूपों का अध्ययन कीजिएगा।'

प्रमोद—'अवश्य। यदि वह सच ही प्रकाश फैलाने वाला है तो मेरी कुटिया का दरवाजा सबसे पहले खुलेगा और मैं भुजाएँ फैलाकर स्वच्छ हृदय से उसकी आभा अपने अन्तर में भर लूँगा। सम्भवतः तब वह अस्तमित सूर्य को प्रखर बना देगा।'

ज्योत्स्ना—'ध्यान रहे, वह सूर्य न तो 'प्रयोगवाद' का है, न 'नयी कविता' का है और न 'छायावाद' द्वारा डूबाए गए सूर्य का नया जन्म है। वरन वह नए कवि के नए हृदय में मानव के उद्धार के लिए उठनेवाली टीस का विशालकाय प्रखर, ज्योतिर्मय रवि है। वह विगत साहित्य, वर्तमान साहित्य का प्रसाद है' और आने वाले साहित्य की प्रेरणा तथा रक्षक है।'

प्रमोद—आज समझा कि ज्योत्स्ना शब्द के पूर्ण अर्थ में ज्योत्स्ना है। मेरा 'आलोचक' मानवता के हित-चिन्तन में उसके आगे नतमस्तक है।'

ज्योत्स्ना—'ऐसी कोई बात नहीं है। महानता कल्याण करने में है—वह झुककर हो या जैसे भी हो।'

प्रमोद—'अच्छा, मैं अपने साहित्य परिषद के सदस्यों से आपके आने की सूचना दे आऊँ। खाना खा लेंगी। यह अपना ही घर है।'

ज्योत्स्ना ने उसे कड़ी धूप में जाने से रोका पर वह नहीं लौटा। ज्योत्स्ना खड़ी रही और सोचने लगी कर्मठ है। सन्देह

नहीं कि कुछ मानवीय दुर्बलता इसमें भी है। पर कुछ न कुछ तो यह कमजोरी सबमें रहती है। विस्तर पर आकर बैठ गयी। 'चित्रा' अंग्रेजी का सातवाँ दृश्य खुला था।

मदन चित्रा से कह रहा था—'टू नाइट इज दाई लास्ट नाइट।'

ज्योत्स्ना की आँखें फैल गयीं जैसे स्वयं 'चित्रा' हो गयी हो। पुस्तक को उठाकर आँखों के निकट लाकर पढ़ी—'टू नाइट इज दाई लास्ट नाइट।'

एक बार आवृति की—[1]'टू नाइट इज दाई लास्ट नाइट' उसे अलग कर हिन्दी-रूपान्तर पढ़ने लगी। चौथा दृश्य था।

चित्रा—'घर ? पर यह प्यार घर के लिए नही है।'

अर्जुन—'घर के लिए नहीं है ?'

चित्रा—'नहीं। उसकी बात मत करो। अपने घर वह ले जाओ जो स्थायी है और पुष्ट है। अरण्य-पुरुप को वही छोड़ दो जहाँ यह विकसित हुआ था, इसे सुन्दरता के साथ दिवस के अवसान के बाद मुर्झाए फूलों और सड़ी पत्तियों के बीच मुर्झाने के लिए छोड़ दो। इसे अपने प्रासाद में प्रस्तर की सतह पर विखराने के लिए मत ले जाओ जो मुर्झाए, विस्मृत पुष्पो के प्रति ममता नही दिखाता है।'

अर्जुन—'क्या हमारा प्यार वैसा ही है ?'

चित्रा—'हाँ, और किसी तरह का नहीं।'

---

१. आज की रात तुम्हारी अन्तिम रात है।

ज्योत्स्ना निष्प्रभ हो गयी। उसे मालूम पड़ा कि प्रभात उसके समक्ष बैठा पूछ रहा है—'ज्योत्स्ना, क्या हमारा प्यार वैसा ही है ?'

ज्योत्स्ना क्या कहे ? कह दे कि 'हाँ, और किसी प्रकार नहीं।' पर ऐसा प्रश्न प्रभात नहीं पूछ सकता है। ज्योत्स्ना समझ गयी कि यह उसकी 'कुण्ठा' थी।

सोचते-सोचते ज्योत्स्ना सो गयी। दरवाजा बन्द करना भूल गयी थी। निद्रा में उसके मानस में स्वप्न मडराने लगे। वह स्वप्न में बड़बड़ाने लगी : 'टू नाइट इज दाई लास्ट नाइट।' तभी प्रमोद अपने कुछ साथियों के साथ प्रवेश कर गया। ज्योत्स्ना की बात सुनकर हँसने लगे-सब। प्रमोद ने कहा—'ज्योत्स्ना जी तो स्वप्न में भी 'रिहर्सल' कर रही हैं ?' ज्योत्स्ना जग उठी और साड़ी को ठीक करती हुई स्नानागार में भाग गयी। मुँह और आँखों को धोकर आयी और नवागन्तुकों को नमस्ते कह बैठ गयी। उनमें ज्योत्स्ना का परिचित साथी विमल कुमार था। उसने ज्योत्स्ना को उलाहना दी कि वह पहले प्रमोद के यहाँ ही आयी। ज्योत्स्ना ने इसके लिए क्षमा माँगी।

प्रमोद ने कहा—'मैं भी ज्योत्स्ना जी की ओर से क्षमा माँगता हूँ। खैर''''रिहर्सल आज संध्या समय होना चाहिए।'

सबकी राय हुई कि ६ बजे से कार्य आरम्भ होगा। परिषद के नाट्य-भवन में सब गए।

रिहर्सल शुरू हुआ। ज्योत्स्ना कुछ झेंपती थी। वह अपने में चित्रा को जाग्रत होने नहीं देती थी। कुछ अस्वाभाविकता

आ जाती थी। प्रमोद ने कहा : 'ज्योत्स्ना जी, आप रिहर्सल के समय गंभीर नहीं रह पाती है।'

ज्योत्स्ना ने कहा–'हाँ, मैंने भी ऐसा ही अनुभव किया। क्या करूँ? मेरे अन्दर की ज्योत्स्ना मरती ही नहीं। जब तक मुझमें ज्योत्स्ना जीवित रहेगी तबतक चित्रा पूर्णरूप से विकसित नहीं होगी।'

प्रमोद ने कहा–'पर मेरे अन्दर का 'प्रमोद' मर चुका है। मैं तो बराबर 'अर्जुन' सा ही अनुभव कर रहा हूँ।'

ज्योत्स्ना बोली–'आप लोभी हैं! और इसी कारण अवसर-वादी भी!! आपका प्रमोद न कभी मरा, न कभी जीवित रहा। जो आपके सामने आया–वही आप में मुखर हो गया। वरन् उसको पाने का भाव ही मुखर हो गया। पर छोड़िए इन बातों को। मेरी 'ज्योत्स्ना' आज मर जाएगी। रिहर्सल में कोई दिक्कत नहीं होगी।'

दूसरे दिन रिहर्सल में काफी सफलता मिली।

× × × ×

रविवार को नाटक सफलतापूर्वक खेला गया। ज्योत्स्ना की भूमिका प्रशंसनीय रही। प्रमोद ने भी कमाल कर दिखाया। सब पात्र अतिथि-भवन में ठहरे। प्रमोद ने ज्योत्स्ना को चलने के लिए कहा तो उसने यह कहकर टाल दिया कि वह कल सुबह की गाड़ी से काशी लौट जायगी। प्रमोद कुछ अप्रतिभ हो गया। ज्योत्स्ना से ठहरने के लिए कहा। ज्योत्स्ना ने कहा–'नाटक

के बाद भी आप मुझे 'चित्रा' के रूप में देखना चाहते हैं तो मैं इसका भी अवसर देती हूँ। पर चौथा दृश्य न भूलिएगा—घर ? हमारा प्यार घर के लिए नहीं है।' और सच ही अर्जुन ने चित्रा को उसके घर छोड़ दिया—सब कुछ प्राप्त कर ! प्रमोद ने 'वैसा ही होगा।' कहकर ज्योत्स्ना की पीठ को थपथपा दिया। ज्योत्स्ना उठ खड़ी हुई। प्रमोद के साथ कुछ दूर तक आयी। प्रमोद ने उसे लौटने को बाध्य किया। ज्योत्स्ना ने कहा—'बहुत चिन्ता है—आपको। धन्यवाद।'

प्रमोद—'चिन्ता तो है पर आप सर्वदा उसका विकृत रूप देखती हैं।'

ज्योत्स्ना—'मैं नारी हूँ न ! नारी में ऐंठन अधिक रहती है !!'

प्रमोद—'सब चीजें एक ही बाट तथा एक ही तराजू पर नहीं तौली जाती हैं।'

ज्योत्स्ना—'कल बाट तथा तराजू बदल कर लाऊँगी' और हँस पड़ी। प्रमोद भी हँसता हुआ 'गुडनाइट' कहकर चला गया।

× × × ×

दूसरे दिन ज्योत्स्ना प्रमोद के घर पहुँची। प्रमोद मुँह धो रहा था। ज्योत्स्ना अपना बैग रख स्नानागार में चली गयी।

प्रमोद ज्योत्स्ना को देखकर उछलते हुए बाहर आया। 'भाग्यवान हूँ।' कहते हुए उसने ज्योत्स्ना को बैठाया। ज्योत्स्ना ने उसे बताया कि बारह बजे की गाड़ी से मैं चली जाउंगी।

ज्योत्स्ना ने स्नानकर साथ ही खाना खाया। वह जाने को तैयार हुई तो प्रमोद ने हँसी में ही कहा—'यदि आपके केशों के बीच का रिक्त भर जाता तो मुझे शान्ति मिल जाती।' ज्योत्स्ना हँसने लगी। उसने सहानुभूति के प्रति आभार प्रकट किया।

स्टेशन पर प्रमोद उसे छोड़ने आया। प्लेटफार्म पर बहुत बातें हुई। ज्योत्स्ना ने प्रमोद को आशा के साथ कार्य करने का निवेदन किया। प्रमोद ने सहर्ष स्वीकार किया। गाड़ी आयी। ज्योत्स्ना गाड़ी में बैठ गयी। प्रमोद चला आया। बहुत से भाव आए और गए।

प्रभात

प्रभात उत्तरी अमेरिका में काफी विख्यात हो गया न्यूयार्क में उषा के तीन पत्र उसे मिले। समय की कमी से उत्तर न दे सका। आज लिखने बैठा :

उषा के नाम प्रभात का पत्र :

उषा,

आज तुमसे बहुत कुछ कहना है। पढ़ो और समझो। रोना नहीं क्योंकि तब यह सारा लिखना रूदन में विलीन हो जाएगा। हाँ, पत्र में जहाँ कोई स्थल मर्मान्तिक लगे, उसके प्रति तुम रूदन लाओगी या हास यह स्वयँ निर्णय कर लेना।

तुम्हारे नाम के पहले मैंने कोई शब्द नहीं जोड़ा है। जब पत्र लिखने बैठा तभी बात मानस में आयी कि क्या लिखकर सम्बोधित करूँ? 'मेरो' के साथ भी बहुत देर तक झगड़ता रहा पर निर्णय मेरे पक्ष में आकर भी कुछ दे न सका। 'जी' का भी उतावलापन देखा पर मन ने विरोध किया। बहुत से प्रश्न एक साथ ही उठ खड़े हुए : उषा प्रकृति की है? अपने माँ-बाप की है? ज्योत्स्ना की है? प्रभात की है? या अपनी नियति की नटी है?

लोग कहते हैं—तुम ईश्वर की दी हुई हो। मन कहता है—तुम प्रकृति की हो! प्रकृति ने बहुत कुछ दिया है। प्रकृति ने फूल दिया है ''सुरभि दी है'''काँटे भी! वृक्ष '' लताएँ''' छाया पपीहा'''उसका स्वर-स्नात 'पी कहाँ''पराग''भ्रमर''' नारी'''पुरुष चाँद रात'''चाँदनी'''नीला आकाश'''तारे'''इन्द्र-धनुष-नदी''''धारा' पहाड़'''कितना गिनाऊँ? तुम भी उन्हीं में से एक हो। पर अन्त में यही समझा है—'उषा प्रकृति की है'''' प्रकृति का पावन उपहार''''मृदुल-मुखर प्रतिमा !!!

तुम्हारे तीन पत्र मुझे मिले। उत्तर समय पर न दे सका यह कमजोरी है, दुःख नहीं। विस्मृति के गर्भ में नहीं था! ज्योत्स्ना का भी पत्र आया था। उसके पत्र को पढ़कर बहुत हँसी आयी।

उसने आरम्भ ही में 'उषा के साहित्यकार' लिखा था। क्या तुम भी मुझे उतना ही संकीर्ण समझती हो? होने दोगी ऐसा? तुम कह सकती हो—'उषा तथा प्रभात प्रकृति की देन है।' तो क्या यही कहकर तुम मुझमें स्थान बनाना चाहती हो? मैं इस तथ्य से भागना नहीं चाहता पर व्यक्तित्व को ढहने न देना।

ज्योत्स्ना के पत्र में बहुत विचित्रता है। वह भी एक विचित्र 'नारी' है। मैं मानवमात्र को अपनी भुजाओं की परिधि में बाँधना चाहता हूँ। भुजाएँ टूटेंगी या नहीं—इसके लिए मैं घबराता नहीं। समुद्र के किनारे जाता हूँ तो लगता है—समुद्र के विस्तार से बहुत सिर काले लम्बे बाल लिए, तैरते मेरी तरफ बढ़े आ रहे हैं। कभी डूब भी जाते हैं, कभी ऊपर भी आ जाते

हैं। उन्हीं में कभी तुम्हारा सिर, कभी ज्योत्स्ना का सिर दिखाई देता है। दौड़ता हूँ कि तुमको खींचकर ऊपर लाऊँ, ज्योत्स्ना को खींचकर किनारे बैठाऊँ। पर केवल दो को ही बचाकर क्या पाऊँगा। किनारे पर बैठा हूँ मैं! तो बचाएगा कौन? ज्योत्स्ना तुमसे अधिक स्थायी है, पुष्ट है। उसमें आसक्ति नहीं है। तुम भी आसक्ति से दूर रहो।

तुम्हारा
प्रभात।

ज्योत्स्ना के नाम प्रभात का पत्र–

ज्योत्स्ना,

तुम्हारा पत्र मिला। सम्बोधन के शब्द अट्टहास के जन्म दाता सिद्ध हुए।

जो कुछ तुमने लिखा है, वह पत्र के उत्तर से पूर्णता प्राप्त करेगा–यह असम्भव है। सम्प्रति पत्र से शान्ति पाने की कोशिश करो।

रात में खाना नहीं खाया। यह केवल इसलिए कि मैं तुम्हारे तथा उषा के हित कुछ बातें सोचना चाहता था। कुछ सामग्री हाथ लगी।

तुमने लिखा है–'कुछ भी स्पर्श से परे हैं–भावना में? और व्यवहार में? मुझसे मत कहलाओ।'

मैं सोचता हूँ, अगर स्पर्श करके भी कुछ सुख नहीं दिया तो वह स्पर्श किसलिए? तुम अपनी बाँहों को कभी-कभी

ललाट पर मार लेती हो। ऐसा करना मेरे प्रति घोर अन्याय होगा। हाँ, तड़के ही उठकर जहाँ मैंने स्पर्श किया था, वह स्थल देख लेना। उतावलेपन से नहीं देखना, शान्ति एवं औदार्य के साथ देखना। और दिन भर खुश रहना। कभी-कभी तुम भी आसक्त हो जाती हो। यह हितकर नहीं है।

तुम मेरी मानस-प्रिया हो! उषा से अधिक तुम मेरे मानस में मंडराती रहती हो। अपने को और तपाओ तब 'प्रभात' स्वयं तुम्हारे निकट आ जाएगा। उषा के नाम पत्र लिख दिया है। तुम्हारी बात मान ली है।

तुम्हारा,
प्रभात।

प्रमोद के नाम प्रभात का पत्र—

प्रमोद,

तुम्हारा पत्र मिला। उसके पहले ज्योत्स्ना का पत्र मिला था।

पत्र को पढ़कर दुःख हुआ। दुःख इस कारण हुआ कि तुम साहित्य-सर्जन से अलग होकर उपदेशक बन बैठे। तुमने ज्यो-त्स्ना के विषय में बहुत कुछ लिखा है। क्या उससे यह स्पष्ट नहीं हो जाता कि तुम उसके व्यक्तित्व से प्रभावित हो? तुमने लिखा है—'उषा तथा ज्योत्स्ना बरसाती जुगनू तथा मौसमी तितलियाँ हैं।' यह तुम्हारी भूल है। यह तुम्हारी दृष्टि का दोष है। या तुम्हारे व्यक्तित्व में जो 'कोढ़' घर कर गया है—उसी ने

तुम्हें गँदला कर दिया है। शायद तुम उससे कुछ निकटता चाहने होगे–'पुरुष की नीच निकटता।'

ज्योत्स्ना को अगर बरसाती जुगनू मानते हो तो यह समझ लो कि वह तभी जुगनू है जब आकाश बादलों से घिरा है।

ज्योत्स्ना प्रकृततः या सुख से जुगनू नहीं है। वह अपनी स्वाभाविकता से दूसरों को प्रकाश देने के लिए जुगनू बनती है। यह उसकी महानता है–प्रमोद !

वे दोनों तितलियाँ भी नहीं हैं। दाना चुगाने की बात ! जो स्वयं दाना चुनचुन खाती हैं उन्हें तुम क्या दाना चुगाओगे ? जो गिरते हैं–उन्हें ही खड़ा किया जाता है। जो टूटता है उसे ही जोड़ा जाता है। उषा तथा ज्योत्स्ना को उठाने तथा जोड़ने की शक्ति तुममें कहाँ है ? तुम आसक्ति के शिकार हो।

बहकने की बात ! वह 'बहक' मुझसे बहुत अलग है। वही बात रहती तो आज न्यूयार्क तथा उत्तरी अमेरिका की गलियों में मेरे नाम पर पुष्प नहीं बिखेरे जाते। तुम कुछ भी लिखने तथा सोचने के लिए स्वतंत्र हो। पर ध्यान रहे–'आलोचक' की दृष्टि से ही सब कुछ मत देखना।

तुम्हारा,

प्रभात।

× × × ×

प्रभात उत्तरी अमेरिका से लौट आया। उषा नहीं मिली। उसके पिता उन्नाव जंकशन पर काम करने चले गए थे। प्रभात

पुस्तक सदन खोलने के लिए लखनऊ किताबें लाने चला गया। रास्ते में ऊन्नाव प्लेटफॉर्म पर उषा मिली। पर वहाँ वह ठहर नहीं सका। लखनऊ से पुस्तकें लाकर पुस्तक सदन खोल दिया। नाम रखा–'आलोक पुस्तक-सदन' वहीं बैठा रहता। कविताएँ करता, कहानियाँ लिखता। यही उसकी दिनचर्या थी।

उषा

उषा तीन महीने तक प्रभात से पत्र व्यवहार न कर सकी। उसके पिता उसकी विवाह की बातें तय कर रहे थे। इस कारण वह भीतर से उद्विग्न रहती थी। प्रभात का पत्र नहीं आता था। इससे किसी भी किनारे वह नहीं लगती थी। उसने अपने को प्रभात को समर्पित कर दिया था। प्रभात एक भी पत्र नहीं भेजता था। इसका कारण उसकी समझ से बाहर था।

नीरजा उसकी छोटी बहन थी। उषा का मन बहलाया करती थी। उसी ने आज इवान तुर्गनेव का उपन्यास 'कुलीन घराना' लाकर दिया। उषा ने उसे काफी सतर्क होकर पढ़ा। उसमें एक कविता थी–

आँसुओं की घाटी ऊपर तैरता चाँद
तैरता और बादलों के बीच फाँदता
करता संचालन अपनी जादू-भरी किरणों से
सागर की लोनी तरंगों को!

ओ मेरी प्रिय, तुम्हीं हो वह चाँद
जिसे देख उमड़ उठता मेरा हृदय
एक सीमाही न सागर
उमड़ता-घुमड़ता और लपकता······

कविता पढ़ते समय ही उसके पिता लौट आए। विवाह की बात पक्की न हो सकी।

उसी दिन पुनः वे सिन्दरी चले गए। वहां एक लड़का कारखाने में करता था। उसके विषय में उन्हें जानकारी के लिए जाना था।

ज्योत्स्ना अब भाई के साथ कहीं जा रही थी। अस्वस्थता के कारण उन्नाव स्टेशन पर ही ठहर गयी। अचानक उषा से भेंट हो गयी उषा उसे अपने घर पर ले गयी। ज्योत्स्ना अपने भाई के साथ वहीं रह गयी।

सन्ध्या समय ज्योत्स्ना बुखार का शिकार हो गयी। डाक्टर आये। देखने पर कहा कि कोई खास भय नहीं है। हालत ठीक हो जाएगी।

उषा अपने साथ ज्योत्स्ना के भाई को लेकर खाने चली गयी। ज्योत्स्ना ने अकेला रहना स्वीकार किया।

ज्योत्स्ना के मानस-पटल पर वह रात उभरने लगी—जब वह प्रभात के साथ उषा के घर ठहरी थी। गीताञ्जलि की कुछ पंक्तियाँ भी स्मृति में उतर आयी और वातावरण मुखर हो गया—

'मेरे प्रभु, मेरी यही प्रार्थना है कि मेरे मन की क्षुद्रता के मूल पर आघात करो।

अपने जीवन के सुख-दुःख को सरलता से सहन करने की शक्ति दो।

'सेवा भाव में मेरे प्रेम को सफल होने का बल दो।'

जब ज्योत्स्ना ने अपना निरीक्षण किया तो पाया कि ज्वर बहुत बढ़ गया है। उषा दरवाजा बन्द कर गयी थी। खिड़की का पल्ला खुला था। उससे होकर कमरे में चाँदनी छिटकने लगी थी। ज्योत्स्ना के मुँह पर द्वितीया के चाँद सी एक वक्र रेखा बन गयी।

उसने इधर-उधर कर के उसकी वास्तविकता समझ ली। अकेली थी। प्रकृति का सौन्दर्य अपनी क्षण भंगुरता के साथ ही उसके हिय में उतरने लगा। वह व्याकुल हो गयी। चाँद को देखने के लिए वह व्याकुल हो गयी। खाट पर सरक गयी। दरवाजे को खोलने के लिए हाथ बढ़ाया पर पदचाप सुनकर लौट गयी। विस्तर पर निष्प्राण पड़ गयी। जब कोई नहीं आया तो पल्ला हटाकर मुँह के बल पड़ गयी। चाँद दीख रहा था। हवा नहीं थी पर ज्योत्स्ना काँप जाती थी।

चादर खींचकर ओढ़ ली पर आँखे खुली रही। उसे आज चाँद देखने की लालसा थी। चाँदनी को अपने अन्तर में उतारना चाहती थी। जब कभी सिर ऊपर करती तो दीवार पर उसकी छाया बन जाती। एक बार तो वह डर गयी। पर बाद में बात समझ में आ गयी। सरक कर आलमारी तक चली गयी। एक किताब निकाली। लिखा हुआ था—

उषा को सस्नेह भेंट —प्रभात

दूसरे पृष्ठ पर लिखा था : रवीन्द्र-गीताञ्जलि

अनुवादक—जगत शङ्खधर।

पृष्ठ उलटने लगी। सर के बल पड़ गयी। पढ़ने लगी—'मैंने तुमसे कुछ नहीं पूछा, मैंने तुम्हारे कानों में नामोच्चारण

नहीं किया, जब तुमने विदा ली तो मैं मौन खड़ो रही। मैं उस कूप के पास अकेली थी—जहाँ वृक्ष की छाया तिर्यक पड़ रही थी और स्त्रियाँ अपने गेरुए घड़े लेकर चली गयी थी। उन्होंने मुझे पुकार कर कहा—'चलो, दुपहरिया हो रही है।' परन्तु मैं अस्पष्ट विचारों में खोई अलसाई रुकी रही। भीतर ज्योत्स्ना की आवाज पहुँच गयी। तीनों हँस पड़े और बोले—'ज्योत्स्ना कोई 'पाठ' कर रही है।'

ज्योत्स्ना सुनकर मन ही मन कुढ़ गयी। पर स्वर हल्का कर पुनः पढ़ने लगी—

'तुम्हारे आगमन पर तुम्हारी पगध्वनि मैंने नहीं सुनी। तुम्हारी आँखें जब मुझपर पड़ी तो उदास थी, जब तुमने धीमे से कहा, 'मैं प्यासा पथिक हूँ।' तो तुम्हारा कण्ठ थका था। वह सुनकर मैं दिवा-स्वप्न से चौंक पड़ी और अपने घर से तुम्हारी अँजुली में जल उँड़ेला। ऊपर पत्तियाँ मर्मर कर रही थीं। अदृष्ट अन्धकार से कोकिल गान कर उठा और पथ के मोड़ से बबूल के फूलों की सुगन्धि आयी।'

ज्योत्स्ना के पूरे शरीर से चाँदनी-लिपट गयी थी। दोनों हाथ ऊपर उठे थे। ओठ हिल रहे थे। बगल की खिड़की से हवा आकर कभी-कभी चादर को हटा देती। बाल उलझ कर गले को घेर लेते। ज्योत्स्ना उन्हें हटा देती। ज्वर बढ़ गया। सम्भवतः अर्धचेतन अवस्था में ही वह यह क्रियाएँ सम्पन्न कर रही थी। पर रुकी नहीं पढ़ती ही गयी—

'जब तुमने मेरा नाम पूछा तो मैं लज्जावनत मौन खड़ी रही। मैंने किया ही क्या है जो तुम मुझे स्मरण रखो। पर यह

स्मृति की तुम्हारी तृषा शान्त करने के लिए मैं जलन दे सकी मेरे हृदय मे संलग्न रहेगी और उसे माधुर्य में संश्लिष्ट रखेगी। प्रातःकाल ढल चुका, पक्षी क्लान्त स्वर में गान कर रहे हैं, ऊपर नीम की पत्तियाँ मर्मर करती हैं और मैं बैठी सोचती ही रहती हूँ।'

आवृत्ति की–'और मैं बैठी सोचती ही रहती हूँ।' सिर को ऊपर उठाकर पढ़ा–'और मैं बैठी सोचती ही रहती हूँ।' और पूरे जोर से किताब को फर्श पर फेंक दिया। चादर को अलग हटा दी और बैठ गयी। पुनः सो गयी। ऊपर ही से किताब उठाने के लिए सरकने लगी। किताब दूर पर थी। अधिक सरकने पर छाती के बल गिर पड़ी। चोट विशेष नहीं लगी। तो भी उसके लिए कुछ कम चोट नहीं लगी थी।

उषा आवाज सुनकर दौड़ी आयी। विमल भी आया। उसे नीचे देखकर सब घबरा गए। उषा ने उसको सहारा देकर बिस्तर पर बैठा दिया। ज्योत्स्ना सीधी पड़ गयी। ज्वर की मात्रा बढ़ गयी थी। उषा ने उसके हाथ से किताब लेकर अलग रख दी। नीरजा विमल के साथ डाक्टर बुलाने चली गयी। उषा निकट ही कुर्सी पर बैठ गयी। दरवाजा बन्द कर दिया गया था।

ज्योत्स्ना ने कहा–'यह दरवाजा क्यों बन्द कर दिया है? कुछ अंश खुला रहने दो। चाँदनी भली लग रही है।'

उषा ने दरवाजा नहीं खोला पर खिड़की में कुछ जगह बना दी। खिड़की का शीशा एक स्थल पर टूट गया था–गोलाकार। उसकी गोलाई दीवार पर दीखने लगी। एक ओर चाँदनी की सीधी रेखा दीवार पर पड़ रही थी। कभी-कभी हवा के झोंके से सीधी रेखा गोलाकार छाया को भेद जाती।

तब ज्योत्स्ना बैठ जाती और अपनी उँगली बढ़ाकर उसे छूने का प्रयास करती। मालूम पड़ता उसे सीधी रेखा को गोलाकार बिम्ब को भेदना अच्छा लगता था। तब मिटाने के लिए हाथ बढ़ा देती। उषा यह सब देखकर हँसने लगी। उसने ज्योत्स्ना की उँगली अपने मुँह में डालकर चूस लिया। बोली—'लो, सारी चाँदनी पी गयी।'

डाक्टर साहब आए। ज्वर एक सौ दो डिग्री था। दवा दी गयी और आराम का पूरा प्रबन्ध किया गया।

दूसरे दिन सुबह ज्योत्स्ना अच्छी हो गयी। रात की गाड़ी से दोनों घर गए।

× × × ×

उषा सोकर उठी तो किरणों का जाल बिछा हुआ था। अपनी किताबें ठीक करने लगी। ज्योत्स्ना ने उसकी किताबों को इधर-उधर रख दिया था। उसी में प्रभात की दी हुई किताब भी थी। प्रभात उसके मानस में आ गया। विवाह की बात और बेचैनी उत्पन्न कर रही थी। प्रभात कुछ भी लिखकर न भेजता था। पराजय के भाव से उषा लिखने बैठी।

मेरे साहित्यकार,

अन्तिम समय तुम्हारे समक्ष अपनी 'उषा' को रख रही हूँ। पुनः यह 'उषा' तुम्हारे समक्ष इस रूप में नहीं आएगी। मैंने तुम्हारे साथ बहुत इच्छाएँ बाँध दी थी।

आस्थावान थी। प्यार को जीवित रखा था। आज सब मिलकर मुझे ही बाँध रहे हैं।

आस्था कहती है—'तुमने उस 'मृतवत' पुरुष से मुझे सम्बद्ध किया।'

प्यार कहता है—'तुमने अपने स्वार्थ के लिए मुझे कोढ़ी बना दिया।'

इच्छाएं कहती हैं—'जहाँ जिसके साथ विश्व के झंझावात हैं—वहाँ अपनी आँधी लिए क्यों उसके चारों तरफ मँडराती रही?'

इन सबका उत्तर देना है। कौन उत्तर देगा—इसी का निर्णय करना है।

कुछ दिनों बाद यह सब जी जायँगे—चाहे इनकी सीमा सीमित ही क्यों न हो!

नहीं लिखना चाहती थी, पर बाद में लिखकर भी क्या पाती?

पाना तो अब भी असम्भव है? नहीं है ऐसी बात?

यह तुम कभी स्वीकार करोगे? तुम तो बराबर कहते ही रहोगे—'उषा प्रतीक्षा करो! मैं आऊँगा।' मैं जब अपने स्वाभिमान से जीवित 'नारी' से पूछती हूँ तो कहती है—'प्रतीक्षा अब मूल्य नहीं रखती।' मैं क्या करूँ?

यह न समझना कि जब तुम नहीं आओगे तो मैं तुम्हारे पास आऊँगी। कृष्ण जब मथुरा चले गए तो राधा गयी? नहीं! क्यों? केवल कृष्ण की मर्यादा की रक्षा के लिए! मैं भी मर जाऊँगी पर तुम्हारे घर या निकट नहीं जाऊँगी।

पिता जी विवाह के लिए बेचैन हैं। सम्भव है वह निकट भविष्य में निश्चित हो जाय। तब क्या होगा? मेरे माँग में सिन्दूर भर जायगा। लोग कहेंगे—'तुम सुहागिन हो!' पर

तुम कहो, मेरा इस तरह सुहागिन रहना सुखकर होगा ? क्या सिर पीट-पीटकर रोने के लिए सिन्दूर लगेगा ? जीवन की लाश ढोने के लिए ?

जिसके साथ जीवन की गांठ बंधेगी वह कितनी आशा लिए बैठा होगा ? जब मैं उसका मनुहार नहीं करूँगी तो वह क्या कहेगा ? वह क्या सोचेगा ?

जो मेरा पति होगा, उसे पूजूँगी। देवता पर एक बार जो फूल चढ़ा दिया जाता है वह दूसरे देवता पर नहीं चढ़ाया जाता है। मैंने तुमको अपना सब कुछ समर्पित कर दिया। पुनः समर्पण कैसे करूँगी ? मेरी 'उषा' तो मर ही चुकी। वह तुमको समर्पित थी। तुम अंगीकार नहीं करोगे तो कहाँ-कहाँ ढोती घूमूँगी ? मुझमें 'नारी' जीवित है। उसे कहीं भी ले जा सकती हूँ; क्योंकि वह दुनिया की रंगीनी है।

किसी भी तरह उसको देख जाना जो मेरा माँग छूने आएगा। मेरा घर भी देखने आना। सम्भव है, तुम कहो—'उषा, तुम राक्षसी हो। जिसके साथ शादी हुई, उसके प्रति ईमानदार बनो।' मैं कहती हूँ, जब तुम इतने बड़े साहित्यकार होकर भी मेरे साथ गाँठ नहीं बाँधते तो मुझे क्या ? मैं तो कहीं भी जी लूँगी।

तुम्हारा कर्त्तव्य तुम्हें यश दे।
तुम्हारी,
उषा (यदि अब भी समझते हो)

पुनःश्च—अगर मेरा घर देखने नहीं आओगे तो ज्योत्स्ना के हाथों तुम्हारी दी हुई पुस्तक लौटा दूँगी !

प्रमोद
का
प्रलाप

प्रमोद ने ज्योत्स्ना को विदाकर स्वयं सारी खुशियों से विदा ले ली। क्यों ? इसका अधिकांश उसका अन्त बता दे, दूसरा कोई स्पष्ट नहीं कर सकता।

'चित्रा' नाटक खेलते समय उसने बहुत सी आशाएं बाँध रखी थी कि ज्योत्स्ना उसे भविष्य में अपने से मिला लेगी। 'अर्जुन' की भूमिका ने तो और हाथ बढ़ाने का साहस भर दिया था। पर उसे कुछ मिला नहीं। नए बाट तथा नयी तराजू लाकर ज्योत्स्ना पुरानी चीजें ही तौलती रही। तौलती भी तो किसे ? प्रमोद को उसे तो बहुत पहले ही तौल चुकी थी।

आंग्ल भाषा का अध्ययन करते समय प्रमोद ने जॉन मिल्टन का 'पैराडाइज लॉस्ट' पढ़ा था।

उसमें पढ़ा था— The mind is its own place, and in itseef can make a heaven of hell and a hell of heaven.[1]

पुनः आगे पढ़ा था—To reign is worth ambition, though in hell.

---

१. मस्तिष्क की अपनी जगह है। यह अपने में स्वर्ग को नरक और नरक को स्वर्ग बना सकता है।

"……Better to reign in hell, than to serve in heaven."[1]

पंक्तियाँ परिस्थिति के कारण उसके मानस में दौड़ गयी। वह ज्योत्स्ना के साहचर्य से उनकी तुलना करने लगा। अन्त में वह इसी तर्क पर पहुँचा कि मस्तिष्क ही सब कुछ कर सकता है। एक समय बातों में ही उसने कहा था—

'थिग इज नाट बैड माइन्ड इज बैड'

एक महीने के बाद प्रमोद की शादी हो गयी। दुल्हन सुन्दर सहनशील तथा भावुक थी। ज्योत्स्ना की याद दुल्हन के मुँह को देखकर बरबस घिर आयी। उसमें कटुता थी, विकर्षण था, पश्चाताप था तथा नीरसता का आभास था। उसमें बदले की उग्रता थी। प्रमोद बैठ गया द्वेष को बाँधे—

ज्योत्स्ना जो,

आज पुनः लिखने बैठा हूँ। जानता हूँ, आप इस बार भी झुँझलाएगी। पर क्या करूँ? समझ लीजिए, पत्र लिखना मेरी 'हाबी' है। कुछ दर्द भी है, कुछ टीस भी है। उसी से बाध्य होकर लिख रहा हूँ।

हाँ, आज और पहले की भावना में, प्यार में, उदारता में, वास्तविकता में……सबमें एक महान अन्तर है। यह सब पुनः मुझसे इस रूप में नहीं मिलेंगे। अलवर्ट आईन्स्टाइन के

---

१. शासन करना ही महत्वाकांक्षा है भले ही नरक में हो! नरक में शासन करना अच्छा है। स्वर्ग में गुलामी करने से।

'Theory of relativity'[1] की वास्तविकता आज समझ में आ रही है।

अभी मैं पत्र लिख रहा हूं। ऊपर आकाश है। आकाश में तारे हैं, चांद है, सूर्य है, बहुत ग्रह हैं। सब कहीं न कहीं होंगे–घूमते हुए! इस अवस्था में जो भाव उठे हैं क्या सम्भव है वे पुनः उठेंगे?

बहुत कुछ लिखना है। आप दृढ़ मन से सुन सकें, इस कारण अभी लिख दूं कि मेरी दुल्हन आज घर में है।

आपके चले जाने के बाद मैं कुछ पथभ्रष्ट हो गया था। किंकर्तव्य विमूढ़ कहना और अच्छा होगा। उस समय सोचा था कि आप किसी न किसी तरह मेरे जीवन में आ जाएगी और मुझे ही कुछ देर अलग हो जाना पड़ेगा। पर आज आप मुझसे अलग हो गयी। कैसे कहूँ कि नियति ही मुझसे अलग हो गयी है?

अचानक ही मिल्टन का 'Paradise lost' हाथ में आ गया था।

बहुत बातें उसमें हैं। यह भी है कि अपने जीवन के 'स्वर्ग का पतन' देख उसने उस किताब की रचना की थी। मेरा भी स्वर्ग बर्बाद हो चुका।

दुल्हन घर में है। घर दुल्हन से चहक रहा है। घर के प्रत्येक अंश से आवाज आ रही है–'अपना घर बसाओ।' कुछ

---

१. सापेक्षता का सिद्धान्त।

दिन के बाद यह भी सुनूँगा–'तुम्हारी गोद में प्रकृति की श्रेष्ठतम कला फिर किलक रही है।'

तुम जानना चाहोगी–दुल्हन कैसी है। तुम नारी हो। बंचना की सहचरी-नारी ! अपना घूँघट नहीं हटाती पर अन्दर ही अन्दर सब कुछ देख लेती है।

यदि दुल्हन अच्छी है तो तुम्हें क्या मिल जाएगा ? खराब है तो तुम्हारा क्या खो जाएगा ? जानता हूँ, जानने के बाद कहोगी–'आया था विधु को काले बादलों से बाँधने ! उठा लाया शारदीय नभ के कोने में पड़ी हुई एक काली छाया !!' हा हा हा हा ·· ···यह भी ठीक ही है।

पर आज तुम उसकी पद रज भी नहीं हो! यह बात अलग है तुम अति सुन्दरी हो। जब तुम्हारा सौन्दर्य किसी का कल्याण नहीं कर सकता, तब वह कलंक है, हास्यास्पद है। मदन का कहना भूलना मत–'टू नाइट इज दाई लास्ट नाइट' तुम्हारे सौन्दर्य के लिए भी एक अन्तिम रात आएगी। तब तुम्हारा सौन्दर्य लुट जाएगा। अरुणिम गाल पिचक जाएँगे। चमड़ा झूलने लगेगा। आँखें धँस जाएँगी। उनके नीचे एक काला धब्बा हो जाएगा। तब पुरुष तुम्हे देखकर थूकेगा।

विश्वास है, तुम इसे उपदेश न समझोगी, वरन् एक क्षुब्ध हृदय का कठोर सत्य। मैं चाहूँगा किसी किनारे लग जाओ। प्रभात तुम्हारे जीवन में नहीं आएगा। इसलिए कहूँगा कि कोई नया किनारा देखो। आशीर्वाद देता हूँ कि जहाँ

जाओ खुश रहो, सबको खुश रखो। पुनः मेरा पत्र न मिलेगा !

तुम्हारा,

प्रमोद।

(जो तुम्हारी दृष्टि में बराबर राक्षसी वृति को लेकर आया।)

उषा के नाम प्रमोद का पत्र—

उषा जी,

यह मेरा दूसरा पत्र है—आपके नाम। पहला कुछ व्यंगात्मक था। यह यथार्थवादी है। इसलिए इसपर ध्यान देंगी। कुछ सीख सके तो मैं आभारी बनूँगा।

मैं आपको जानता हूँ। हाँ, उतना नहीं जानता जितना आपका साहित्यकार आपको जानता है। पर अधिक जान कर भी क्या होगा ? मेरी समझ में 'जानना' किसी के साथ साहचर्य की अवधि में वृद्धि करना है। पर कहीं पढ़ा था कि अधिक जानना अलग हो जाना है।

आज जब बैठकर सोचता हूँ तो पाता हूँ कि आपके प्रति कोई कटुता नहीं है। यह भी समझ गया हूँ कि किसी को नहीं जानते हुए पूजना उसके प्रति सच्ची श्रद्धा है। पर बिना जाने रूप तथा नाम कैसे याद रह सकते हैं।

कहीं पढ़ा था कि रूप को याद रखने के लिए नाम को याद रखना जरूरी है। जितने नाम होंगे उतने रूप होंगे। नाम भी विकृति में भी रूप बढ़ा रहता है। मैं नही समझता कि आपका नाम याद रखूँ या रूप ? पुनः प्रश्न सामने आता है—'किसी को भी याद करके क्या पाना है ?' बहुत झुँझलाहट के बाद समाधान मिलता है—'अपने को भूलने के लिए अपनेपन की संख्या में वृद्धि की भावना।' यह स्वीकृति हुई। नहीं याद करके भी ऐसी स्वीकृति दी जा सकती है। हाँ, तब वह दुस्सह अवश्य होगी।

अब 'जीवन के लिए कला' का समर्थन करता हूँ। लिख दूँ क्योंकि आपके साथ भी बहुत क्षण व्यतीत हुए है। मैं आज विवाहित हूँ। दुल्हन घर में ही है। वह सुन्दर भी है। वह भावुक भी है।

उषा जी, वह जीवन नहीं जिसमें केवल सुखद स्वप्न मड-राते रहें।

उनको बाँधना और साकार रूप देना भी अनिवार्य है। अच्छा हो, आप 'सपनों के देश' में भ्रमण करना छोड़कर यथार्थ की धरती पर खड़ी हों। बालू की राशि पर पैर न रखें। वह चमकती जरूर है पर सबको फिसलने को मजबूर करती है। अन्ततः वह बालू का राशि हीन है।

विवाह के बाद एक साथी मिलने आया। उसने कहा—'Kiss your sweet dreams' मैंने उसकी तरफ देखकर दृष्टि

नीचे कर ली। बाँह पकड़कर मुझे पार्क में ले गया। अचानक मेरे मुँह से निकल गया–'मित्र, मैं अपने प्रेम की चिता का धुँआ देख रहा हूँ।' मैंने अपनी पीठ दूसरी तरफ कर ली। वह मेरी पीठ पर रेखाएँ खींचने लगा। हम पार्क में घूमने लगे। किसी के जूड़े में कोई फूल लगा रहा था। मैं अपने वाटा शू से पार्क की घास पर ठोकरें देते हुए आगे बढ़ गया। जैनेन्द्रजी ने ठीक ही लिखा है–'अपना-अपना भाग्य।'

ज्योत्स्ना से मेरा परिचय बढ़ गया था। मैं उसे संवारना चाहता था। सजाना चाहता था। पर वह निकल भागी। उसके विषय में विशेष लिखना वेदना को नया रूप देना है।

आज से मैं आप सबकी दुनिया से विदा ले रहा हूँ।

विदा–जीवन में आए हुए सुखद एवं दुःखद स्वप्नों से, आयी हुई वेदनाओं से !!

आपके जीवन में सुखद स्वप्न आएँ !

आपका,

प्रमोद।

(अगर क्षमा कर सके !)

प्रभात के नाम प्रमोद का पत्र–

भैया प्रभात,

आज मैं तुमसे विदा लेना चाहता हूँ। क्या लेकर विदा लूँगा–यह मत पूछना। विदा लेने के बाद अगर अपनापन हो

तो देख लेना अपने चारों तरफ ! तुम्हारे लिए कुछ भी छोड़ा हो—हितकर या अहितकर—तो कृतज्ञ समझूँगा ।

एक दिन मैंने ही कहा था—

'Thing is not bad, Mind is bad'.

इसलिए आशा है, तुम उस अहितकर को भी हितकर बना लोगे ।

तुम पूछोगे—'क्यों आए और क्यों विदा ले रहे हो ?'

मैं कहूँगा—'आया क्योंकि आना था और जा रहा हूँ क्योंकि जाना है ।' तुम फिर भी पिण्ड नहीं छोड़ोगे । कहोगे—'यह पहेली कहाँ से सीख आए ?' मैं कहूँगा—'पहेली का भी जवाब होता है । पर जिस जीवन का कोई जवाब नहीं उसको दूसरों के साथ घसीटने से क्या प्रयोजन है ?'

यह विदा का पत्र है ! तुम्हे याद है, कैसे मैं आया था ? या तुम्ही खींच लाए थे ? या तुम्हारी नियति ने ही मुझे तुमसे बाँध दिया था ? या तुम्हारी सेवा का आदर्श ही मुझे पाछे-पीछे दौड़ाता रहा ? कौन सच है ? नहीं कह सकोगे क्योंकि दौड़ाने का मोह तुममें है ।

मैं बैठ गया हूँ । बैठने के लिए नहीं—दूसरी तरफ दौड़ने के लिए ! बहुत पहले भी उस तरफ दौड़ सकता था । अब भी हो सकेगा पर कष्ट के साथ ।

बहुत खुश रहता था कि आलोचक की मित्रता एक 'साहित्यकार' से है। यह एक प्रयोग था। दुनिया के सामने एक आदर्श (स्वाभाविकता नहीं ?) था। पर मैंने ही उसकी जड़ उखाड़ दी। कहूँगा, ज्योत्स्ना के 'अहम्' ने भी उसे कहीं का नहीं रहने दिया। तुम कहोगे—ज्योत्स्ना के 'अहम्' को लेकर क्या करना था ?'

मैं कहूँगा 'वही तो हम दोनों के अलग होने का कारण है। इसमें मेरी ही अधिक कमजोरी है। यह कभी न कहना कि एक 'आलोचक' 'साहित्यकार' से अलग हो रहा है। कहना कि एक मित्र ने दुःस्वप्नों को देख शेष सुखद स्वप्नों में आग लगा दी।'

एक बार उषा तथा ज्योत्स्ना को मौसमी तितली तथा बरसाती जुगनू कहा था। वह मन की कटुता थी या उनके व्यक्तित्व के प्रति मेरी हार।

अब उन्हें कुछ भी नहीं कहूँगा।

तुम साहित्य-साधना मत छोड़ना। 'प्रमोद आलोचक' से कभी साक्षात्कार हो ही जाएगा। मुझे बिदा दो। दुल्हन को बहलाना है।

तुम्हारा,

प्रमोद

(जो अब आलोचक है—केवल !)

ज्योत्स्ना के लिए लिखे गए पत्र को पढ़ने पर प्रमोद ने पाया कि उसके लिए तुम आप और 'तुम' दोनों का व्यवहार हो गया है। यह उसकी उद्विग्नता थी। इसलिए आभास के लिए वैसा ही रहने दिया।

प्रभात

प्रभात का पुस्तक-सदन 'युनिवर्सल बुक स्टॉल' के निकट ही था। प्रभात अपने पुस्तक-सदन में बैठा रहता। ग्राहकों की अनुपस्थिति में 'बालभारती' के पृष्ठ उलटता रहता। कुर्सी पर इस तरह बैठता कि उसका मुँह 'बालभारती' से पूर्णरूप से ढंक जाता। आँखें लाल दीखतीं जैसे उनमें विश्व की सारी कटुता घर कर गयी है।

एक दिन तड़के ही पुस्तक-सदन खोलने लगा। अभी खोल ही रहा था कि दूसरी तरफ से आवाज आयी—

'प्रभात कुमार कहाँ रहते हैं?'

प्रभात ने आवाज सुन ली। उस व्यक्ति को बुलाया।

प्रभात ने उससे पूछा कि वह कहाँ से आ रहा है। उसने बताया कि मैं बनारस से आ रहा हूँ। ज्योत्स्ना बहन ने मुझसे आपके सदन के लिए पुस्तकें भेजी हैं। अपना नाम बिमल बताया। वह ज्योत्स्ना का भाई था।

प्रभात यह सब सुनकर मौन रहा। किताबों का बण्डल खोला। बहुत किताबें थी। उनमें टॉल्सटाय का 'अन्ना करेना', मिल्टन का 'लॉस्ट होराइजन' भी था। विमल ने प्रभात को संक्षेप में बताया कि ज्योत्स्ना को पुस्तकें खरीदने में काफी

दु:ख उठाना पड़ा। पहले पिता जी ने इसका विरोध किया। बाद में वे भी सहमत हो गए।

प्रभात ने कहा—'यदि मैं पुस्तकों को लौटा दूं तो क्या होगा ?'

विमल—'शायद ज्योत्स्ना घर छोड़कर कहीं चली जाएगी।' प्रभात के ओठों पर उषत् मुस्कान बिखर गयी। उसने 'लॉस्ट होराइजन' लौटाते हुए कहा—'यह पुस्तक मुझे नहीं चाहिए।' विमल ने उसे रख लिया।

सान्ध्य काल में दोनों 'तात्याटोपो पार्क' में घूमने गए। वहाँ से घूमकर 'गणेशशंकर विद्यार्थी पार्क' में आए। झाँव के पेड़ थे। गुलाब के फूल थे। कुछ श्वेत, कुछ लाल।

प्रभात उन्हें देखकर गुनगुनाने लगा—

श्वेत गुलाब—शांति का प्रतीक !

लाल गुलाब—उत्थान का प्रतीक !!

प्रभात वहीं बैठकर सोचने लगा—'ज्योत्स्ना को शान्ति चाहिए या उत्थान ? शांति के अभाव में उत्थान कैसे सम्भव है ? पहले उसे शांति चाहिए, बाद में उत्थान !

प्रभात श्वेत गुलाब तोड़ने लगा। उसे तोड़कर लाल गुलाब तोड़ने लगा। तभी दूर से एक व्यक्ति चिल्लाया—'फूल न तोड़िए। फूल तोड़ना मना है।' प्रभात का हाथ रुक गया। वह ऊपर की ओर मुँह उठाकर देखने लगा। बिमल ने कहा—'छोड़िए इन फूलों को। कहीं दूसरी जगह तोड़ लेंगे।'

प्रभात ने कहा—'फूल तो हजारों की संख्या में मिल सकते हैं। पर जो भाव लेकर मैं इसे तोड़ रहा था वह सम्भव नहीं।

ज्योत्स्ना की शान्ति के लिए श्वेन गुलाब तोड़ा। उसके उत्थान के लिए लाल गुलाब तोड़ रहा था। हाथ रुक गया। अब मुझे लगता है कि ज्योत्स्ना का उत्थान सन्देहात्मक है। विमल ने कहा—'यह अधिक अंश में कल्पना है। इससे घबराने की बात नहीं है।'

रास्ते में प्रभात ने एक लाल गुलाब तोड़ लिया। अपने सदन में विमल के साथ लौटा! चाय पी। विमल शहर देखने चला गया।

प्रभात ज्योत्स्ना की भेजी हुई पुस्तकों में श्वेत तथा लाल गुलाब की पँखड़ियाँ बिखेरने लगा। गुनगुनाता रहा—श्वेत गुलाब—शांति का प्रतीक! लाल गुलाब—उत्थान का प्रतीक!

विमल के झोले से 'लास्ट होराइजन' निकाल कर उसमें श्वेत एवं लाल गुलाब की पंखड़ियाँ चिपकाने लगा। उन पंखड़ियों के बीच में लिखा:—

'मैंने अपना खोया हुआ क्षितिज पा लिया।' पुनः उसे विमल के झोले में रख दिया।

ज्योत्स्ना द्वारा भेजी हुई पुस्तकें रेक पर रख दिया। झाँव की की पत्तियों को बिखरा दिया उन पर। गुलाब की कुछ पंखड़ियाँ मुँह में लेकर चबाते हुए बाहर निकल आया। सदन के ऊपर बोर्ड लगा था—'आलोक पुस्तक सदन' चाहा कि 'आलोक' मिटाकर 'ज्योत्स्ना' लिख दे। पर विमल की उपस्थिति में उसे ऐसा नहीं किया। झाँव की पत्तियाँ तथा गुलाब की पँखड़ियाँ सिर पर रखकर लिखने लगा—

ज्योत्स्ना,

अब तुम्हें 'आप' नहीं कहूँगा। 'जी' भी नहीं जोड़ सकता। अब तुमने मुझे ऐसा लिखने के लिए कुछ छोड़ा नहीं।

विमल मुझसे मिले। तुम्हारी भेजी हुई पुस्तकें मिलीं। मैंने उन्हें लौटाना चाहा पर तुम्हारी कहानी सुनकर रख लिया। अभी विमल घूमने गये हैं शहर! इस कारण लिखने बैठ गया हूँ।

सन्ध्याकाल में हम दोनों घूमने निकले। एक पार्क में पहुँचे तो श्वेत तथा लाल गुलाब देखा। तात्याटोपी पार्क से झाँव की पत्तियों को तोड़ लाए। लाल गुलाब तोड़ते समय एक व्यक्ति ने मुझे रोक दिया। मैं रुक गया। मुझे दुःख हुआ। इसलिये नहीं की लाल गुलाब मिलना असम्भव था, वरन् इसलिए कि उसके साथ मेरा एक भाव था। मैंने श्वेत गुलाब को शांति का प्रतीक माना है। लाल गुलाब को उत्थान का प्रतीक माना है। श्वेत गुलाब तो तोड़ लिया। पर लाल गुलाब? वह नहीं मिल सका। भाव टूट गया। इसलिए चिन्तित हूँ।

तुमने किताबें भेजी हैं। उसमें 'लॉस्ट होराइजन' भी है। मैं उसे लौटा रहा हूँ। बुरा न मानना। अब मेरा 'क्षितिज' दीख रहा है तो इसे क्यों रखूँ?

उषा की चिट्ठी आई थी। वह अच्छी है—मैं लिखता हूँ। पर उसने जो लिखा है उससे ऐसा आभास नहीं होता। उसने

बहुत कुछ लिखा है। क्या-क्या लिखूँ ? लिखती हैं, 'अगर सिन्दूर लगाने नहीं आओगे तो मेरा घर देखने आना।' वह कैसे जानती है कि मैं नहीं आऊँगा ?

प्रमोद का भी पत्र आया है। उसने मुझसे विदा ली है। तुमको ही वह दोषी बतलाता है। मैं किसको दोषी ठहराऊँ ? मुझे किसी से विदा लेनी है। मैं विदा लूँगा—'अपनी अकर्मण्यता से, अपनी कमजोरी से।'

जानता हूँ; तुम्हें बुरा लगेगा। पर आज लिख ही देता हूँ। यदि तुम प्रमोद का साथ देती तो बुरा न होता। इतना तो तुम भी स्वीकार करोगी कि प्रमोद में भी प्रतिभा है। अगर उस प्रतिभा को विश्वास मिलता तो मानव का कितना कल्याण होता ? पर अब क्या करना है ?

मैं चाहूँगा, तुम विदेश जाने के पहले कुछ करो जिससे मैं खुश रह सकूँ। मुझे तो आश्चर्य होता है कि हम चार व्यक्तियों की दुनिया में किसी प्रकार की शान्ति नहीं रही ? कैसे हम मिले ? क्या लेकर मिले ? क्या पाने के लिए मिले ? प्रमोद कुढ़कर दुल्हन का मनुहार कर रहा है ! -उषा उद्विग्न होकर मुझे अपना घर देखने को बुलाती है !! तुम चुपचाप पुस्तकें भेंट कर रही हो !!! यह सब क्या हो रहा है ? तुम सब मेरी ही तरफ देख रहे हो ! पर यह सबकी भूल है। तुम सब ही मिलकर मुझे पूर्ण करते हो। नदियाँ एक जगह मिलती हैं तो सागर बनता है ! जहाँ एक भी नदी नहीं बहती वहाँ मरुभूमि बनती है। यही वास्तविकता है। मैं चाहूँगा, किसी भी हालत

में मरुभूमि नहीं बनने दो। जितना सींच सको, सींचो। सोच रहा हूँ, तुम्हें क्या दूँ! ईश्वर (यदि है तो!) तुम्हें शान्ति दे!! तुम्हें यश मिले, ज्योत्स्ना!!!

तुम्हारा,

प्रभात।

(जो तुम्हारे प्रति बहुत उदार है!)

पुनश्च—'अगर तुम बुलाती तो मैं आता तुम्हें देखने! तुम्हें देखे बहुत दिन हो गए। परिचय भी कितना क्षणिक था? तुम इतनी दूर चली-आयी और मैं अभी राह ही पूछ रहा हूँ? अब सूचना दिए बिना ही कभी आजाऊँगा। तुम्हें देखने की बड़ी लालसा है!!'

विमल तीन घण्टे के बाद लौटा। वह खुश था—शहर देखकर! प्रभात से उसने कहा कि कानपुर अच्छा शहर है। सिनेमा हाल अच्छे हैं, दूकानें अच्छी हैं। वह निशाल मिष्टान्न भंडार भी देख आया तथा वहाँ नास्ता किया। खाना खाकर वह रात की गाड़ी से काशी लौट आया।

प्रभात विमल को कानपुर सेन्ट्रल स्टेशन तक छोड़ने गया। लौट कर आया तो सोने का उपक्रम किया पर नींद नहीं आयी। उषा की बातें घर करने लगी। उषा को सामने बैठा समझने लगा। कल्पना में उषा उससे पूछ रही थी—'साहित्यकार, बोलो न, मेरा क्या होगा? किस किनारे लगने की राय देते हो?' प्रभात उत्तर देने लगा—

उषा,

तुम्हारा पत्र मिला। मैंने उसे कई बार पढ़ा। उसके एक-एक शब्द मुझे याद है।

दुनिया के लोग वर्तमान को सँवारते हैं, सजाते हैं। वर्तमान का विकास ही भविष्य का उद्गम है। तुम आज भविष्य की बात क्यों करती हो ?

भविष्य मुट्ठी में बाँधने की चीज नहीं है। बहुत सोचकर भी हम वहाँ तक नहीं पहुँच सकते। इसलिए उद्विग्न न हो।

मैं जानता हूँ–अपना कर्तव्य। एक साहित्यकार जो कहता है–उससे उसे बहुत कुछ पाना होता है। उसके शब्द मनोरंजन के ही साधन नहीं होते।

नारी अपने स्वार्थ की बात अधिक सोचती है। जबतक बच्चा जन्म नहीं लेता तबतक पतिदेव को पूजती है। यदि कोई उसके सौन्दर्य पर अच्छा व्याख्यान दे देता है तो पतिदेव भी अपनी राह लग जाते हैं। बच्चा इसलिए पैदा करती है कि उसका समाज में अधिकार हो जाता है। यह है नारी की विडम्बना। मैं इससे पूर्णतया सहमत नहीं हूँ। पर ऐसा होता है बहुत कुछ ऐसी ही तुम भी नारी हो। तुम भी ऐसा सोच सकती हो। कुछ भी सोचो। मुझे अपनी बात निभानी है।

विवाह से घबराने की कोई आवश्यकता नहीं है। दूर रहकर भी प्यार पाला जा सकता है। प्रेम की ईहा विवाह

नहीं है ! मैं तुम्हें अपनी दुल्हन बनाना बुरा नहीं मानता। पर दूसरे की होकर भी तो तुम मुझे सहायता दे सकती हो ? इतनी आसक्ति क्यों ? मैं तुमसे मिलूंगा।

तुम्हारा,

प्रभात

(जो तुम्हारे प्रति अब भी ईमानदार है !)

उषा

उषा के विवाह की बातें समाप्त हो गयीं। विवाह का दिन भी निश्चित हो गया। उषा को यह बात छोटी बहन नीरजा से मालूम हो गयी। वह नीरजा को अपनी बाँहों में बाँधकर बहुत रोयी। कल्पना में तो वह प्रभात को ही बाँधकर रो रही थी। प्रभात ने लिखा था कि भविष्य तक हम नहीं पहुँच सकते। कितना सत्य था उसका लिखना।

उषा वह किताब देखने लगी जिसे प्रभात ने उसे भेंट की थी। लिखा था–'उषा को सस्नेह भेंट।' –प्रभात

सोचने लगी–अब यह स्नेह क्या होगा? 'स्नेह' शब्द को मिटाना चाही पर रुक गयी। याद आया–प्रभात ने लिखा है–'मैं आऊँगा।'

पुस्तक बन्द कर प्रभात को सूचना देने बैठी।

मेरे साहित्यकार,

मैं पत्र लिख रही हूँ। कमरा बन्द है। इधर-उधर कोई नहीं है। नीरजा भी रोकर-रूलाकर चली गयी है–कहीं! मेरे साथ वह भी क्यों रोती रहे? सबका अपना-अपना भाग्य है। मेरा भी है! पर कितना दर्द-स्नात है?

आज से दस दिन बच रहे हैं–जब मैं दुल्हन बनूँगी। आज की रात चली जाएगी तो नौ रातें रह जाएँगी। एक रात को तो माँग ही भर जाएगा–सिन्दूर से! हा हा हा हा·····
सब निश्चित है। सब ठीक है। पूछते क्यों नहीं हो, क्या निश्चित है? दुल्हन बनने का दिन निश्चित है। जो मेरा माँग छूने

आएंगे उनके आने का दिन निश्चित है। एक ही इन सबको अनिश्चित कर सकता है। वह तुम हो !!!

पर क्या तुम आओगे ? तुम्हें क्या, तुम्हारे पीछे तो दुनिया चलती है ?

पिताजी से कहूँगा, 'आप अभी रहने दें।' पर अब क्या होने वाला है ? वे कहेंगे, 'उषा, तुम मेरे जीवन की अभिलाष हो। तुम्हें मैं उदासीन नहीं देख सकता। तुम्हारा साहित्यकार तुम्हें क्या खिलायेगा ?' मैं पिताजी को क्या कह कर समझाऊंगी नारी प्यार पाकर कई दिनों तक भूखी भी रह सकती है ? नारी प्यार चाहती है ! आज किससे-किससे लड़ूं ? यदि तुम साथ देते तो 'जौहर' की आवृति करती ! पर तुम तो पुस्तक-सदन में बैठे हुए, ग्राहकों से झगड़ रहे होगे ! कर लो, जो करना है !

एक बार आ जाओ। गांठ न बांधो पर प्यार की गांठ को तो और मजबूत बना जाओ। विवाह के पहले तुम्हें देखना चाहती हूं। अगर तुम ज्योत्स्ना को प्यार करते हो तो उसके सोहाग की कसम तुम यहाँ आ जाओ ! तुम्हारी—उषा
(जिसकी माँग तुम्हारी उंगलियां छूने के लिए खुजला रहा है)

× × × ×

विवाह की रात आयी। बारात आयी। उषा दुल्हन बनी। दुल्हन बनकर ससुराल गयी पर प्रभात न आ सका। कल्पना का सुमन कितना सुरभि-स्नात होता है ? यथार्थ की धरती कितनी कड़ी होती है ? उषा को जिससे डर था। वही हुआ। वह लाश बनकर गयी ससुराल। खुशी की जगह मूर्च्छना थी।

घुमड़ता दर्द

उषा दुलहन बनकर ससुराल चली आयी। सबने देखा, सबने प्रशंसा की। उसे रुपये मिले, मिठाइयां मिलीं। पर प्रभात नहीं मिला! साहित्यकार नहीं मिला!! सुहागरात भी चली गयी। पतिदेव सहनशील थे। उषा अपने अन्तर के घुमड़ते दर्द को छिपाने लगी।

जिससे हमारा रागात्मक सम्बन्ध होता है उसका अस्तित्व इतना पुष्ट होता है कि उसके प्रति हम अज्ञात नहीं सकते। हाँ जीवन में कभी ऐसा आभास होता है कि हमने उस पर मिट्टी डाल दी है। पर यह एक ढोंग है।

उषा का भी रागात्मक सम्बन्ध था—प्रभात से। यह, उषा जानती थी। प्रभात जानता था। ज्योत्स्ना जानती थी। प्रमोद भी जानता था। उसके साहित्य से परिचित व्यक्ति भी ऐसा कह लेते थे।

पर आज! आज केवल उषा ही कहती है कि उसमें है प्रभात! प्रभात से अगर पूछा जाता तो वह कहता:—'सोच कर कहूँगा। उषा अब एक विशेष व्यक्ति की 'पत्नी' हो गयी। पर उषा? वह तो सोचती है अब भी प्रभात मेरा ही है।'

उषा ने अपने पतिदेव से स्पष्ट रूपेण कह दिया मैं प्रभात से प्रेम करती हूं। वह मेरा सर्वस्व है। उसके पतिदेव मुस्करा

कर रह गये। उन्हें टॉलसटॉय के उपन्यास 'अन्ना करेनिना' की याद आ गयी। जब 'अन्ना करेनिना' का पति अलक्षे अलेक्षेन्द्रोविच उसे घोड़े की दौड़ दिखाकर किसी तरह अपनी गाड़ी से लौट रहा था, तब उसके बहुत कुछ कहने पर अन्ना बोली थी–'तुम्हारी भूल नहीं थी। वह मेरी भूल थी और मैं निराश होने से अपने को बचा न सकी।'

मैं तुम्हारी बात सुनती हूँ, पर उसके लिए सोच रही हूँ। मैं उसे प्यार करती हूँ, मैं उसकी पत्नी हूँ। मैं तुम्हें सह नहीं सकती, मैं तुमसे भयभीत हूँ, और तुमसे घृणा करती हूँ। जो कुछ करना चाहते हो, मेरे साथ कर सकते हो।'

उषा के पतिदेव भी 'अन्ना' के पतिदेव के समान ही सब कुछ पी गए!

उषा पतिदेव की सेवा करती। उसके पति ने एक दिन कहा–'उषा मैं प्रेम का 'क्लाइमेक्स' जानता हूँ। मैं तो चाहूँगा कि तुम अपने साहित्यकार को यहाँ बुलाओ। मैं कुछ भी बुरा न मानूँगा। तुम्हें दर्द का दरिया नहीं बनने दूँगा।'

याद की पीर ने ही एक रात कलम उठा ली। रात कैसी थी, यह उषा कैसे देखे? वह तो अपना घाव देख रही थी। आकाश में चाँद था, तारे थे। धरती पर चाँदनी बिखरी पड़ी थी।

पर क्या लिखे? प्यार के लिए? वह तो अब दूसरे रूप में है? सह-अस्तित्व के लिए? असम्भव है। लिखने लगी–

'सबके साहित्यकार'

कहाँ हूँ यह तुम समझ लेना। मुझे उस शब्द से घृणा नहीं है। वह तो मेरे जीवन के साथ लगा हुआ है।

सब कुछ हो गया। क्या नहीं हुआ। पर जो हुआ वह कितना विद्रूप है? जाने भी दो।

यदि मैं तुम्हारे साथ रहती और तुम पर किसी प्रकार की आँच आती तो मुझे कितना अखरता? वासना की बात! वह किसमें नहीं है? प्रकृति भी तो पुरुष का साहचर्य चाहती है! यदि नहो तो नारी को दुनिया में क्यों आने दिया? वासना का आधिक्य अहितकर होता है। मैं भी वैसा नहीं होने देती पर आज इन सबसे क्या पाना है?

ज्योत्स्ना भी नहीं आयी। कैसे आती? जो स्वयं निराश है वह दुनिया को क्या दे सकती है?

यहाँ वासना की पूर्ति होती है। तो भी बेचैन हूँ। क्या इसमें तुम्हें कुछ नहीं दीखता?

क्या अब भी तुम मेरे प्रति उतने ही ईमानदार हो?

तुम्हारी, उषा

(जिसकी आस्था अब भी तुममें है!)

श्रद्धा के देव,

सुबह से सन्ध्या तक बैठी रहती हूँ! लोग आते हैं और चले जाते हैं। लोग कहते हैं, 'प्रभात के आने का रास्ता पूरब से है।' मैं पूरब को ओर मुँह किए बैठी रहती हूँ। जबतक 'वे' घर में रहते हैं—तब तक उनकी सेवा करती हूँ। जब वे चले

जाते हैं तो शीघ्र खाकर दरवाजे पर बैठ जाती हूँ। बराबर बैठी रहती हूँ कि तुम आओगे। पर तुम नहीं आते हो। पल्ला खड़ा कर देती हूँ और देखती रहती हूँ। पर तुम नहीं आते हो !!

दो तीन घण्टे बैठने के बाद आंगन के फूलों के निकट बैठ जाती हूँ। यह रजनीगन्धा···यह गुलाब···यह टेसू······कितने खुश हैं–यह सब और मैं ? पर क्यों कुढ़ूँ उनके भाग्य पर ?

'वे' साढ़े दस बजे दिन में अपने कार्यालय में चले जाते हैं। इञ्जिनियर हैं–सिंचाई विभाग में ! साढ़े पांच बजे लौटकर आते हैं। मुझे देखकर कहते हैं–'अपने साहित्यकार की राह देख रही हो ?' तुम्ही कहो, कितनी सत्यता है इसमें ! पर 'उनको' कितना अखरता होगा ? यह सब तुम्हीं न करा रहे हो ? मैं 'उनसे' कहती हूँ हाँ, पर आपकी भी राह देखती हूँ।

वे हँसने लगते हैं।

उनका नाम जान लो। उनका नाम राधारमण है ! उनका नाम जितना सुन्दर है, उतना ही 'वे' उदार भी हैं। 'वे' सब सह जाते हैं। इसीलिए उन्हें बहुत मानती हूँ।

तुम्हारी, उषा

(जो तुम्हें देखने के लिए बैठी रहती है !)

आस्था के प्राण,

प्रतिदिन बैठी रहती हूँ। पूरब की ओर मुंह किए दरवाजे पर बैठी रहती हूँ। पर तुम नहीं आते हो ! मेरे आँगन में बहुत कम विकसित फूल रह गए हैं। प्रतिदिन उन्हें तोड़कर रखती हूँ कि जब तुम आओगे तो तुम्हारे चरणों पर पड़ेगें। एक दिन

तो 'वे' हंसते-हंसते लोट-पोट हो गए। मैं कभी चूल्हे में आंच देती, कभी माला गूंथती। 'वे' बोले—'क्या इसी गाड़ी से तुम्हारा साहित्यकार आएगा ? देखो, उसे भगा मत देना। मैं भी उसे देखूंगा। देखूंगा कि वह कैसा है जो यहाँ नहीं आता है—जिसके लिए तुम इतना रोती हो।' मैं माला फेंककर चूल्हे के निकट चली गयी और बैठकर बनाने लगी। जब 'वे' स्नानागार से बाहर आए तो मैं सिसकियां ले रही थी। 'वे' भीगे कपड़े फर्श पर फेंककर मेरे पीछे आकर खड़े हो गए। झुककर मेरा मुंह देखने लगे। मैं रो रही थी। 'वे' मुझे उठाकर कमरे में ले आए। मैंने कहा—'दाल जल जाएगी।' 'वे' मुझे पुचकारते हुए बोले—'दाल जलने दो। जहाँ जीवन ही जल रहा है वहाँ दाल की क्या पूछ है ?' मुझे बैठाकर आँसू पोंछते हुए बोले—'उषा, बुरा मान गयी ? मैंने तो मजाक किया था। मैं तो तुम्हारे दुःख को देखकर कहता हूँ कि वह कितना निर्मम है ? उसे तुम्हे एक पत्र भेजना चाहिए ?' वे रुआंसे सा मुंह बनाए मुझे देखते रहे।

क्या एक पत्र भी नहीं लिख सकते ? पत्र लिखना तो मेरी एक 'हाबी' हो गयी है।

तुम्हारी, उषा

(जो तुम्हारी पगध्वनि सुनने को आतुर है !)

टूटी वीणा के गान,

तुम जानते हो, मैं वीणा बजाती हूँ। वीणा यहाँ भी है। पर वह बजती नहीं है। उसके तार तुमने ही तोड़ दिए। जब

तुम आओगे न तो सुनाऊँगी। तुम्हारे जाने के बाद उसे धारा में प्रवाहित कर दूँगी।

प्रतिदिन तुम्हारी चर्चा होती है। यहाँ घर के सब हँसते हैं। कहते हैं–'कैसा साहित्यकार है? एक पत्र भी नहीं भेजता? हा हा हा हा······टूटपूँजिए साहित्यकारों की बात क्या करते हो यार?' मैं दरवाजे पर बैठकर सुनती हूँ। मन कहता है 'सब पर आग उठा कर फेंक दो।' पर तुम्हीं कहो, वे जो कहते हैं, वह सत्य नहीं है लोग कहते हैं–'बहू बहुत स्वाभिमानिनी है।' मैं सोचती हूँ–'मेरा स्वाभिमान ही क्या जब तुम मुझे देखने नहीं आते?' आओ। घर देख जाओ। मेरी इज्जत रखो!

तुम्हारी, उषा

(जो तुम्हारी पद रज केशों में डालने के लिए बेचैन है!)

जीवन-क्षितिज के अरुण,

मैं नहीं स्वीकार करती कि आज तुम्हारी किरणें मेरे जीवन-क्षितिज पर अन्तिम लास्य कर रही हैं। मैं तो मानती हूँ कि उनकी ज्योति मेरे मुँह को आभामय रखेगी। मैं तो तड़के ही सूर्य के उदय के साथ ही जग जाती हूँ। तुम्हारी राह देखने लगती हूँ। जब किरणें मुझपर पड़ती हैं तो समझती हूँ कि तुम चल दिए हो। तब कमरे की गन्दगी साफ करने लगती हूँ। पर तुम नहीं आते हो।

मैं प्रतिदिन तुम्हारी प्रतीक्षा करती हूँ। घर के सब तुम्हारी आलोचना करते हैं। कुछ दिन पहले 'उनके' साथ बाजार गयी थी। डरती थी, कहीं तुम रास्ते ही में मिल गए तो क्या

होगा ? कैसे बातें होंगी ? एक किताब की दुकान पर गयी तो तुम्हारी नयी किताब की माँग की। 'विदा की रात' मिली। तो क्या वह मेरे ही लिए लिखी गयी है ?

तुम्हारी, उषा

मन की सुषमा,

मैं कितनी व्यथित हूँ—यह कौन बताए ? आज तीन महीने हुए, पर तुम न आए !

मैं रोज प्रतीक्षा करती हूँ। घर में तुम्हारी आलोचना होती है। पर तुम नहीं आते हो ! मैं दरवाजे पर बैठी राह देखा करती हूँ। पर तुम नहीं आते हो !!

एक दिन कमरे से बाहर निकली तो फूलों में स्पन्दन देखा। अनुभव किया—वे मेरा आवाहन कर रहे हैं। मैं दौड़ी गयी और उन्हें अपने गालों पर दबा लिया। अन्तर कहता था—'तुम' आ रहे हो।' पर सन्ध्या समय जब पक्षी अपने घोसलों में चले गए तो भी तुम नहीं आए ! यहाँ तुम्हारा घोसला कहाँ हैं !!

तुमने अपना नीड़ बनाया या नहीं ? यदि नहीं तो कबतक भागोगे ? भाग कर आकाश में जाओगे ? वहाँ क्या है ? इन्द्र धनुष है ! पर क्या उससे तुम्हारा पेट भरेगा ? क्या तुम्हारी कला 'कला' के लिए ही है ? वह जीवन के लिए नहीं है ? तुम्हारा व्यवहार कहता है—'कला जीवन के लिये है।' पर भावना में ?

कुछ न बोलूँगी।

तुम्हारी, उषा

भग्न हृदय के देव,

एक दिन वे बोले—'चलो, नौका बिहार कर आएँ।' मैंने सहमति दी। हम किनारे पहुँचे। नाविक को बुलाकर नाव मंगाई। नाव धारा को चीरती, लहरों से खेलती आगे बढ़ने लगी। पर मेरा मानस पीछे हटने लगा। तुम्हारे गीत, तुम्हारा प्यार और तुम्हारा 'कवि'…सब मेरे अन्तर में एक-एक कर उतरने लगे।

तुम्हारे गीत कहते थे—'तुम्हारे कानों में गुदगुदी भर देंगे। तब तुम रोओगी।'

तुम्हारा प्यार कहता था—'जब तुम इतनी उतावली हो तो 'कवि' का प्यार कैसे पाओगी ?'

तुम्हारा 'कवि' कहता था—'उषा, कवि मानव-मन की कहानी का जीवन मात्र है। उसका अन्त अपने शरीर के माँस को काटकाट खाने में होता है। अच्छा हुआ तुम उससे अलग हो गयी।

मैंने अपना कान बन्द कर लिया और शीघ्र ही अपना सिर पकड़कर 'उनकी' गोद में गिर पड़ी। वे घबराए। मेरा मुँह देखने लगे। मैंने अपना मुँह ढक लिया। कुछ देर के बाद अपना मुंह ऊपर किया। वे बोले—'क्या हुआ था, उषा ?'

मैं बोली—'दुनिवार स्मृतियों की आँधी आयी थी। अब स्वस्थ हूँ।' मैं अंजुली से पानी उलीचने लगी। 'वे' मुझे गाने के लिए तंग करने लगे। मुझे रवीन्द्र की एक कविता याद थी वही गुनगुनाने लगी—

'वे' चाँद को देख रहे थे। कभी-कभी मुझे भी देख लेते। चाँद भागता जा रहा था—शारदीय नभ में! शारदीय नभ! शारदीया रजनी!! असहाय कौन? व्यथित कौन? असमर्थ अशान्त कौन? मैं! मैं!! मैं!!! पर असमर्थ क्यों? पर अशान्त क्यों? व्यथित क्यों? जो है, वही ठीक है! मैंने वीणा रख दी। तब वे चौंक उठे, क्योंकि तन्मय थे। मुझे अपने निकट खींच कर मेरे सिर पर हाथ रख केशों की सुरभि नासापुटों में भरने लगे। बोले—'उषा तुम बहुत अच्छा गाती हो। मैं तुम्हारे लिए कितना सहनशील हूँ? पर तुम कुछ भी नहीं पिघलती।' मैंने उनकी हथेलियों को खींचकर अपनी आँखें ढक ली। वे हथेलियों को हटाकर मेरा मुंह देखने लगे। मेरे कर्ण मूल के निकट अपना ओठ लाए।

मेरे कर्णमूल को ओठों से दबाने लगे। गुदगुदी मालूम पड़ने लगी। मेरा मुंह लाल हो गया। 'वे' उँगलिया पकड़कर चूसने लगे और अपनी ठुड्डी के नीचे दबाते हुए बोले—

आमार ए प्रेम नयन भीरू नयत हीन-बल,
शुधू किए व्याकुल होए, फेलबे अश्रु जले।

—रवीन्द्र

तब चाँद तिर्यक था। हमारी छाया नाव पर बड़ी भोली बन रही थी। मैंने उसे स्पर्श करना चाहा पर उन्होंने मेरा केश-पुञ्ज पकड़कर खींच दिया। मैं उनकी गोद में गिर पड़ी। मेरा मुंह ऊपर की ओर खुला था। उनका मुंह ऊपर था। उनकी नाक मेरे गाल को स्पर्श करने लगी। उनके ओठ मेरे

ओठों को स्पर्श करने लगे। मैंने अपना मुंह ढंक लिया। 'वे' खिलखिलाकर हँस पड़े।

क्या मैं तुम्हारे लिए बैठ सकती हूँ? तुम्हारे उत्तर की प्रतीक्षा करूँ?

तुम्हारी,
उषा

मेरे निष्ठुर प्राण,

मैं नहीं जानती, इसका परिणाम क्या होगा। पर लिख देती हूँ। एक दिन की बात! मैं अभी सोयी थी। 'वे' उठकर बाहर घूमने चले गए थे। कुछ देर के बाद आए तो कमरे में प्रवेश कर कहने लगे: 'उषा जागो, तुम्हारा साहित्यकार आ गया।' मैं इतनी घबरायी हुई उठी कि पलंग पर मेरा पैर साड़ी से उलझ गया और मैं गिर पड़ी नीचे बुरी तरह। 'फ्रैक्चर' के ही समान कुछ हो गया। तो भी मैं तुम्हें देखने के लिए इतनी तन्मय हो गयी कि दर्द रहते हुए भी बाहर दौड़ गयी। वे मुझे ऐसा करते देख निष्प्राण हो गए। 'उन्हें' आज समझ आयी मैं तुम्हारे प्रति कितनी ईमानदार हूँ। वे बहुत रोए। मैं भी अलग कमरे में जाकर रोयी। पुनः उनके निकट बैठ गयी और बोली—'आप जानते हैं कि वीणा के तार टूट गए हैं। तो भी उसे क्यों छेड़ते हैं? वह तो सर्वदा अधूरा-बेतुका स्वर ही निकालेगी!'

वे बोले—'मैं जानता था कि वीणा में नया तार लग जाता है। पर आज समझा कि इस वीणा में तार जोड़ना

कठिन है।' मैं बोली—'मैं जोड़ूँगी।' 'वे' मुझे अपनी तरफ खींचकर अपने वक्ष से दबा लिए। अपनी ठुड्डी सिर पर रख मेरी वेणी को वे सूँघने लगे। मैं उनकी कमीज के बटन को बन्द करने लगी—

वे मेरी पलकों को बहुत देर तक चूमते रहे।

तुम्हारी,
उषा।

प्रकृति के गायक,

तुम कवि हो। लोग तुमसे मिलते हैं। तुम्हारे पास उनके हित के लिए काफी सामग्रियाँ हैं। तुम कहानीकार भी हो। 'विदा की रात' में तुमने क्या नहीं लिखा है? मैं समझती हूँ, मेरी विदाई से तुम इतने भावुक हो गए हो। अच्छा है। यह मेरे प्रति ईमानदारी का प्रमाण है। पर केवल इसी को लेकर क्या करूँगी?

कहीं पढ़ा था कि पुरुष का प्रेम उसके और कार्यों से लगा हुआ एक कार्य है। पर नारी का प्रेम उसका पूर्ण अस्तित्व ही है। मानती हूँ, तुम उनमें नहीं हो।

तुम प्रकृति के गायक हो। क्या मैं प्रकृति से बाहर हूँ?

तुम मेरे विषय में क्यों नहीं सोचते? अब नहीं सोचोगे तो कहूँगी कि तुम प्रकृति के गायक नही हो। मेरा घर एक बार देख जाओ।

तुम्हारी,
उषा।

भग्नमन्दिर के देवता,

जानती हूँ, तुम्हारे मन्दिर में दीपक नहीं जलता होगा। पुजारिन अलग हो गयी है—तुम्हारे ही चाहने से ! तो दीपक कौन जलाए ? यहाँ आकर अपना दिल ही जलाती हूँ। आज सुबह की बात ! सोकर उठी तो सूर्य की किरणें फूलों की पंखड़ियों पर ताल दे रही थीं। हवा के झोंके से फूल कई दिशाओं में झुक जाते थे। कभी-कभी कितने फूल आकर एक ही में मिल जाते थे। मैं दरवाजे पर बैठकर देखने लगी। मैं उनके बीच में जाकर बैठ गयी। फूल मुझपर गिरने लगे। कितना आह्लादप्रद उनकी चोट थी ? उसमें कैसा स्वर्गीय सुख था ? कोई लाल···कोई नीला···कोई पीला···कोई हरा।

कितने इन्द्रधनुष बन जाते थे। मैं चाहती थी तुम्हारे जीवन में इन्द्र धनुष उगाना। पर तुमने अवसर नहीं दिया।

अमर बनने के लिए नश्वर का मनुहार करना पड़ता है। मेरा घर देख जाओ।

तुम्हारी,
उषा।

ज्योत्स्ना

उषा की शादी में ज़्योत्स्ना न जा सकी। उषा ने तार दिया। पर इसकी सूचना उसे नहीं मिली। ज्योत्स्ना के पिता ही चले गए। प्रभात भी चला गया था। दुर्भाग्य से रेलगाड़ी उलट गयी। फलस्वरूप प्रभात तथा ज्योत्स्ना के पिता घायल हो गए। अस्पताल में कुछ दिनों तक रहने के बाद भी ज्योत्स्ना के पिता की मृत्यु हो गयी। प्रभात बच गया। ज्योत्स्ना को जब सूचना मिली तो वह बहुत रोई।

प्रभात अच्छा होकर ज्योत्स्ना के घर आया! ज्योत्स्ना ने जब उसे देखा तो पहले मौन रही। पुनः मुखर हुई–'तुम आए हो?' उसकी आँखों में आंसू आ गए। प्रभात ने पूछा–'ज्योत्स्ना, तुम रो रही हो?' ज्योत्स्ना बोली–'हाँ, पर दुःख से नहीं। तुम आए हो, इसीलिए रो रही हूँ।' प्रभात के घुटनों पर अपने हाथों को रखकर बोली–'भूख लगी होगी। कुछ खाओगे?' प्रभात ने उसका मुँह दबा दिया और कहा–'तुम रोओगी और मैं खाऊँगा? खाऊँगा तो तुम्हारे दुःखको।'

ज्योत्स्ना बोली–'यह तुम कह रहे हो या तुम्हारा 'कवि'।

प्रभात ने कहा–'आज तुम्हारे प्रति दोनों जागरूक हैं।'

ज्योत्स्ना यह सुनकर बहुत खुश हुई।

× × × ×

ज्योत्स्ना तथा प्रभात घूमने निकले। कम्पनी बाग पहुँचे। पानी का फौव्वारा खुला था। तार की जाली के नीचे मछलियाँ उछल-कूद रही थीं। ज्योत्स्ना निकट से देखने लगी। प्रभात ने हँसते हुए कहा—'क्या देख रही हो?' ज्योत्स्ना—'प्यासे का पानी की तरफ उमड़ना।'

प्रभात—'भावनाओं में रहती हो?'

ज्योत्स्ना—'वह भी कोई खराब साधन नहीं है।'

ज्योत्स्ना खींचकर प्रभात को तालाब के किनारे ले गयी। प्रभात बैठ गया। ज्योत्स्ना कंकड़ चुनचुन कर तालाब में फेंकने लगी। पानी में लहरें उठने लगीं। दूसरे किनारे तक उनका विस्तार पहुँच गया। ज्योत्स्ना प्रभात को दिखाने लगी। प्रभात ने उसे गंभीरता पूर्वक देखकर कहा—'तुम्हें किनारे लगने का मोह है क्या?'

ज्योत्स्ना—'किसे तुमने किनारे लगाया?'

प्रभात—'यह सम्भवतः उषा के प्रति तुम्हारे उद्गार हैं।'

ज्योत्स्ना—'और तुम मुस्करा रहे हो!'

प्रभात—'तुम रोकर भी उसे मुझतक पहुँचा न सकी!' दोनों घर लौट आए। रास्ते में ज्योत्स्ना मौन रही। प्रभात आकर चारपाई पर धम्म से गिर पड़ा। ज्योत्स्ना बोली: 'थक गए हो? पर किससे व्यवहार से या भावना से?'

प्रभात—'तुम्हारे त्याग से!'

खाना खाने के बाद बातें हुई। ज्योत्स्ना दूसरे कमरे में सोने के लिए जाने लगी। प्रभात ने उससे कुछ विशेष बातें

करने के लिए रोका। वह सामने खाट पर बैठ गयी। बोली—'क्या है, कहो न ?' प्रभात ने कहा : 'बहुत कुछ कहना है। पर तुम सुनोगी ? सुनो तो कहूँ ?' ज्योत्स्ना : 'मैं सुनने के लिए सर्वदा तैयार हूँ।'

प्रभात एक चौड़ी खिड़की के नजदीक खड़ा हो गया। आकाश बादलों से भर रहा था। कुछ भाग अब भी स्वच्छ था। पर काले बादल उसे ग्रसते जा रहे थे। चाँद छिपने जा रहा था। प्रभात खिड़की पर झुका हुआ बोला—'ज्योत्स्ना, आकाश बादलों से भरा जा रहा है।'

ज्योत्स्ना—'हाँ, सच ही है। पर तुम्हें क्या कहना है ?'

प्रभात—'सुनती जाओ। मैंने कहना शुरू कर दिया है।' वह झुककर ज्योत्स्ना का मुँह देखने लगा।

ज्योत्स्ना गंभीर हो गयी। बोली : 'क्या देख रहे हो ? क्या कभी देखा नहीं है ?' प्रभात : 'आज की तरह नहीं देखा था। आज मैं कटु सत्य देख रहा हूँ। मैं तुम्हारी आभा देखना चाहता था।' प्रभात पुनः खिड़की के नजदीक गया और वहीं से चिल्लाया—'ज्योत्स्ना, चाँद डूब गया।'

ज्योत्स्ना बैठी रही। प्रभात निकट आकर बैठ गया। धीरे से बोला : 'उषा इसी तरह डूब गयी !' तुम भी इसी तरह डूब रही हो !! मैं क्या करूँ ? तुम किनारे लग जाओ, ज्योत्स्ना।'

ज्योत्स्ना धीरे-धीरे उठकर दूसरे कमरे में चली गयी। प्रभात भी दरवाजा लगाकर खाट पर पड़ा रहा।

चार दिनों के बाद प्रभात कानपुर चला गया।

× × × ×

प्रभात के जाने के बाद ज्योत्स्ना बहुत दिनों तक उसकी बातें सोचती रही। अपने अन्तर को टटोलने पर वह समझी कि प्रभात बहुत गहराई तक उसमें उतर गया है। उसने स्पष्ट शब्दों में कह भी दिया 'I love his spirit' वह सोचने लगी कि प्रभात के लिए क्या करे। अचानक एक बात उसके दिमाग में आ गयी। उसके नाम से दस लाख रुपए बैंक में थे। उसने एक प्रकाशन मन्दिर खोलने का निश्चय कर लिया। अपने निकट के व्यक्तियों की राय ली। और कुछ दिनों में उसे सफलता भी मिल गयी। उसने उस प्रकाशन मन्दिर का नाम रखा : 'उषा हिन्दी भाषा प्रकाशन गृह, नीचीबाग।'

स्वयं भी लिखने लगी। अच्छे साहित्यिकों को पुरस्कार देने के लिए पाँच लाख रुपए बैंक में जमा हो गए। पुरस्कार का नाम रखा गया : 'उषा पुरस्कार।'

ज्योत्स्ना को इस कार्य से काफी शान्ति मिली।

उषा को इसकी सूचना देने बैठी :

मेरी उषा,

आज तुम्हारे सामने कुछ बातें रखनी है। उन्हें टालना मत, समझना। तुम्हारे नाम के पहले मैंने जो जोड़ दिया है। तुम आश्चर्य करोगी। पर ऐसा न करना। मैं बराबर तुम्हारी ही रही !

जानती हूँ, तुम अपने ससुराल में हो। तुम रोती गयी और बराबर रोती रहोगी।

तुमने प्रभात को बुलाया था। मुझे भी बुलाया था। पर शुभ अवसर पर न पहुँची और न प्रभात पहुँचा। मैं ज्वर से पीड़ित थी। पिता जी गए तुम्हारे घर। पर लौटे नहीं। वे ऐसी जगह चले गए जहाँ से कोई पुनः यहाँ नहीं आता। कैसे लिखूँ कि प्रभात भी वहीं जाते-जाते बच गया? यदि वह भी चला जाता तो क्या होता? मैं कहाँ जाती? तुम कहाँ जाती? मानवमात्र की आँखें किसे देखती? उनका विश्वास किसे मिलता? माँ भारती का वरद्हस्त किसके सिर पर पड़ता......। मैं भावना में बही जा रही हूँ। ईश्वर ने या तुम्हारे प्यार ने उसे बचा लिया।

तुम भी चली गयी। जहाँ गयी हो वहाँ सुख नहीं होगा तुम्हें—भावना में!

यह न समझना कि मैं प्रभात की उंगली से अपने माँग को लाल कराना चाहती हूँ। तुम्हें दोष लगेगा। तुम दोनों के लिए ही मैं जीवित हूँ। मरूँगी तो तुम दोनों भी उसके कारण होंगे।

प्रभात आया था मेरे घर। उसे मेरी चिन्ता है। पर मुझे ऐसी बात अच्छी नहीं लगती।

तुम्हें बहुत दर्द है इससे कोई भी असहमत नहीं हो सकता! तुम सब सहने की कोशिश करो। प्रभात के सिर पर बोझ न दो। उसके सिर पर मानव-कल्याण का बोझ है, मानव-स्तर को ऊँचा उठाने का बोझ है। हाँ, वह इसे बोझ नहीं मानता। मैं भी नहीं स्वीकार करती। पर तुम्हारी आँखों में शायद वह बोझ ही है। प्रभात में भावुकता है। वह उमड़ सकता है।

और क्या लिखूं । ईश्वर तुम्हें सुहागिन रक्खें । तुम्हारा जीवन सुखमय हो, आह्लादमय हो ।

तुम्हारी,

ज्योत्स्ना

\+ + + +

'उषा हिन्दी भाषा प्रकाशन गृह' का कार्य अच्छी तरह चलने लगा । अच्छे-अच्छे लेखकों एवं कवियों की रचनाएँ प्रकाशन के पथ पर आने लगी । हाँ 'प्रयोगवाद' के नाम पर 'छिछालेदर' करने वाले लेखकों एवं कवियों को प्रश्रय नहीं जाता था । 'नयी कविता' के प्रतिभा-सम्पन्न साहित्यकारों के के लिए स्थान सुरक्षित था । ज्योत्स्ना भी कविता तथा कहानियाँ लिखने लगी । इस प्रकार नये युग के नए समर्थ कवियों, लेखकों के नए चरण की चाप से हिन्दी-भाषा-भूमि ध्वनित होने लगी । यह हिन्दी-साहित्य के लिए वरदान प्रमाणित हुआ । यहाँ लेखकों तथा कवियों के 'गुट' को प्रश्रय नहीं मिला । नए सर्जन के साथ सद्भावना का स्वागत होने लगा । इसने जागृति ला दी, पाठकों तथा साहित्यकारों में । पुरानी रूढ़ियों के महल गिर पड़े । उन पर हरी दूब निकल आयी ।

प्रभात

प्रभात ज्योत्स्ना के घर चार दिनों तक रहा। पुनः कानपुर चला आया। ज्योत्स्ना से उसे निराशा ही मिली। ज्योत्स्ना किसी किनारे लगने में असमर्थ थी। अर्थात् वह अविवाहिता ही रहना चाहती थी।

प्रभात जानता था कि समाज में कितना 'कोढ़' है। नारी अकेले अपने को ढो नहीं सकती—ऐसा समाज ने पुरुष ने नियम बना दिया है। जब नारी स्वयं जीवन ढोने को तैयार हो जाती है तो पुरुष को धक्का लगता है। वह समझता है कि नारी उसके समकक्ष हो गयी है। जब नारी समकक्ष हो जाएगी तो पुरुष का दण्ड-विधान सदा के लिए विलीन हो जाएगा। तब पुरुष के पास रह क्या जाएगा ? उसे कुछ चाहिए जिससे वह दूसरों पर अपना शासन चलाए। अधिकार के अभाव में तो वह मरने लगता है। आज अधिकार की लिप्सा ही सारे नीचता का मूल है।

ज्योत्स्ना इसे नहीं मानती थी। यह इस कारण कि वह कॉलेज की छात्रा थी। शब्दों की दुनिया में रहती थी। कविताओं, कहानियों, उपन्यासों, नाटकों की घाटियों में वह घूमती फिरती थी। उन घाटियों में उसे तरह-तरह के फूल, श्वेत बर्फ दीख पड़ते थे। उसे पता नहीं था कि यथार्थ की धरती

का इन्सान आज 'हैवान' की संज्ञा को भी लज्जित करता है। आज का इन्सान खुले बाजार अच्छे-अच्छे कपड़े पहन कर हँसते हुए ईमान बेचता है और इज्जत खरीदता है।

प्रभात जानता था। वह धरती का कवि था और ग्रहों तक राकेट से भारत-भूमि की गरिमा पहुँचानेवाला पुरुष।

सदन का कार्य पुनः अच्छी तरह चलने लगा। उषा के दस पत्र आये थे। सरसरी निगाह से देखकर रख दिया रात में पढ़ने के लिए।

× × × ×

दिन गया। रात आयी। चाँद आया। तारे आए और उषा की याद आयी और उषा के पत्र आए!

प्रभात सदन के भीतर बैठकर पत्र पढ़ने लगा। एक बार पढ़ा'''दो बार पढ़ा''''तीन बार पढ़ा। पढ़ना छोड़कर सिर को थामकर बैठ गया। मानस में बातें मडराने लगी—'उषा बेचैन है। उषा रोती है। उषा बुलाती है। पर क्यों बुलाती है? क्यों रोती है? क्यों बेचैन है? अब बुलाकर क्या होगा? अब रोकर क्या होगा? अब बेचैन होकर क्या पाएगी? सबका अन्त हो गया। पर मैं जानता हूँ? नहीं। क्योंकि पत्र पढ़ रहा हूँ। तब क्या उषा के घर जाना पड़ेगा? मन और आत्मा ने एक स्वर से कहा—'हाँ जाओ उषा का घर देख आओ।'

प्रभात किसी भी रूप में यह नहीं समझ सका कि अब जाकर क्या पाया जा सकता है। पर एक बात अचानक

मानस में आ गयी। यदि मैं नहीं जाता हूँ तो उषा समझेगी कि मुझे विवाह करने की चाहना थी।

मैंने ही कहा था कि विवाह प्रेम की ईहा नहीं है। उषा का पति समझेगा कि उषा कुलटा है। इसी कारण मैं उषा से मिलने नहीं आता हूँ। इसलिए उषा का घर देखना आवश्यक है।

प्रभात ने तार दे दिया उषा को।

दूसरे दिन प्रभात पटना पहुँच गया। रात में पहुँचा था, इसलिए एक होटल में ठहर गया।

राधारमण—उषा के पति का कार्यालय बोरिंगरोड में ही था। सुबह कार्यालय में गया। नौकर से पूछा—

'राधारमण जी आए हैं?'

नौकर—'आपका नाम?'

प्रभात—'साहित्यकार!'

नौकर दौड़कर भीतर जाकर राधारमण से बोला—'हुजूर, एक बाबू आए हैं। वे कानपुर से आ रहे हैं।'

कानपुर का नाम सुनते राधारमण उठकर खड़ा हो गया। नौकर से पूछा—'उनका नाम क्या है?'

नौकर—'साहित्यकार!'

राधारमण बाहर दौड़ गया। प्रभात बाहर खड़ा था।

राधारमण ने पूछा—'साहित्यकार आप ही हैं?'

प्रभात—'हाँ!' राधारमण ने उसे छाती से लगा लिया। प्रभात यह देखकर विस्मित हो गया। वह समझ गया कि

राधारमण सज्जनता की प्रतिमूर्ति हैं। नास्ता करने के बाद दोनों रिक्शे से पहुँच गए डेरे पर।

राधारमण रिक्शा से उतर गया और प्रभात से उषा, उषा कहकर दरवाजा खोलवाने के लिए कहा और स्वयं दूसरी ओर चला गया।

प्रभात ने उसे बहुत रोका पर वह रुक न सका। प्रभात समझ गया। राधारमण दोनों के मिलने के आह्लाद और स्वाभाविकता में बाधक नहीं होना चाहता था।

उषा का डेरा जक्कनपुर महल्ले में डी० वी० सी० के 'क्वार्टर्स' के उत्तर तरफ पोथार भवन के निकट ही था।

प्रभात दरवाजे पर चोट करता हुआ पुकारने लगा—उषा ! उषा !! उषा सोयी थी। घबराकर उठी और जब दरवाजा खोला तो देखकर हक्का-बक्का हो गयी। 'साहित्यकार ?' कहकर प्रभात के चरणों पर गिरने दौड़ी पर प्रभात ने खींचकर अपने वक्ष से लगा लिया। दोनों का प्यार पिघल-पिघलकर आँसू के रूप में बहने लगा। प्रभात उषा को खींचकर बिस्तर पर ले गया। अपने बैठकर उसे बैठाते हुए बोला—'उषा, उषा, देखो मुझे। मुझे देखने के लिए बुलाई हो न ? अपना घर देखने के लिए बुलाई हो। अब रो रही हो ? अपना मुँह ऊपर करो।'

उषा के गाल आँसुओं से भीग गए। वह ऊपर की तरफ मुँह उठाकर प्रभात का मुंह देखने लगी। प्रभात की आँखें भी लाल थी। उषा उसके गिरते हुए आँसुओं को पोछने लगी।

बोली—'तुम क्यों रोते हो ? तुम मत रोओ। यह दाढ़ी क्यों बढ़ा ली है ?' प्रभात के बालों को सहलाती हुई बोली—'कुछ खाए हो ? ओठ तो सुख गए हैं ?'

नीचे उतर गयी और प्रभात के पैर के चप्पल को निकाला। पैर धोकर उस पानी को अपने मुंह में डाला तथा कमरे में छिड़क दिया।

एक ग्लास पानी लायी। घी आटे की कमी थी। बिस्कुट लाकर दे दिया। प्रभात बिस्कुट खाने लगा। उषा का रुदन बन्द हो गया। पर प्रभात का रुदन बन्द नहीं हुआ। उँगलियों पर आँसू गिरते तो उषा उन्हें चाट जाती थी। प्रभात उसके सिर पर हाथ रखकर उसे देखने लगा। उषा बोली—'क्या देख रहे हो ?'

प्रभात—'तुम्हारे माँग का सिन्दूर !'

नास्ता के बाद प्रभात खाट पर बैठ गया और उषा फर्श पर एक दरी फैलाकर निकट ही बैठ गयी। अपने दोनों हाथों को उसने प्रभात के घुटने पर रख दिया। उषा बोली—'तुम्हें सिन्दूर अच्छा लग रहा है ?'

प्रभात—हाँ।'

उषा—'क्यों ?'

प्रभात—'जिसने सिन्दूर लगाया है उसे देख लिया।'

उषा—'तो क्या 'उनसे' तुम्हारी भेंट हुई ?'

प्रभात—'हाँ मुझे दरवाजे तक छोड़कर चले गए।'

उषा—'ऐसा क्यों ?'

प्रभात—इसलिए कि हम दोनों का मिलन स्वाभाविक हो।'

उषा—तुम यह समझ गए ?'

प्रभात—'इससे भी अधिक। मैं समझता हूँ, वह हम चारों से आगे हैं।'

उषा—'तुम अपने से भी अच्छा मानते हो ?'

प्रभात—'हाँ, तभी तो खुशी है। मैं अब तुम्हारी तरफ से निश्चिन्त हो गया।'

उषा—'पर वे इतना कुढ़कर ही न करते हैं ?'

प्रभात—'महानता कुढ़न के भीतर से जन्म नहीं लेती। कुण्ठा कुढ़न से उत्पन्न हो सकती है।'

सबसे बड़ी बात यह है कि वे 'साहित्यकार' की मर्यादा पर अधिक बिश्वास रक्खे हुए हैं। साहित्यकार के साथ 'सत्यं-शिवं-सुन्दरम्' का निवास होता है। इस कारण वहाँ किसी प्रकार की बर्बरता नहीं आती। साहित्यकार तो सारी नीचता का उद्धारक है।'

उषा—'देखने आओगे न ?'

प्रभात—'हाँ।'

प्रभात ने अपनी अटैची खोलकर फूलों को निकाला। उसके साथ झाँव की पत्तियाँ थीं, कुछ मिट्टी भी थी।

उषा—'यह मिट्टी कहाँ की है ?'

प्रभात--'जहाँ हम सब प्रथम मिले थे—उस फूलबाग की नीचे की मिट्टी है।'

उषा ने अपने केशों को बिखरा दिया। प्रभात उसपर मिट्टी, फूल तथा झाँव की पत्तियाँ डालने लगा। उषा सिसकने लगी। प्रभात की आँखों से आँसू गिरने लगे। वह धीरे-धीरे बड़बड़ाने लगा—

आह ! मिट्टी प्यार की।

मिट्टी, मिलन औ' प्यार की।

कान्तिमय केशों में तेरे, डाल दी !!

प्रभात ने अपना नया उपन्यास 'विदा की रात' भी उषा को भेंट कर दिया।

राधारमण आया। उसने प्रभात से अनुपस्थिति के लिए क्षमा माँगी। बोला—'मेरी अनुपस्थिति का अन्य अर्थ न लगायें'

प्रभात—'ठीक है।'

राधारमण—'उषा, तुमने इन्हें कुछ खिलाया ?'

प्रभात—'बहुत कुछ खिलाया।

राधारमण-'हा हा हा हा......।'

साहित्यकार जी, भावुकता से पेट नहीं भरता।

प्रभात—'पहले न भरता हो, पर आज बहुत भर गया है। दूसरी बात—साहित्यकार रोटी की कम चिन्ता करता है।'

राधारमण—'धन्यवाद ! हमें आपसे ऐसी ही आशा है। उषा आपको बहुत प्यार करती है। आज उसके प्यार में कोई कमी नहीं है। मैं भी इसे कोई कष्ट नहीं देता। यह केवल इसलिए कि ऐसा करने से तीन नष्ट हो जाएँगे—'मैं, आप और उषा ! स्वयं सह लेता हूँ तो दो का जीवन चलेगा। आपका और उषा का।'

प्रभात मौन रहा। राधारमण ने मौन भंग किया। 'आप बराबर आते रहेंगे।'

प्रभात—'आशा तो ऐसी ही है।'

उषा के केशों में मिट्टी देखकर राधारमण बोला—'उषा, तुम्हारे केशों में मिट्टी कैसी ?'

उषा—'यह प्रथम दर्शन का पराग है। जहाँ हम दोनों ने प्रथम बार एक दूसरे को देखा था वहाँ की मिट्टी है। इसे साहित्यकार ने अपने हाथों मेरे केशों में लगा दिया है।'

राधारमण—'Poet ! Creator of sentiment.' राधारमण ने अपना सिर भी उषा के केशों से रगड़ लिया।

प्रभात ने कहा—'आप मरुभूमि के शाद्वल प्रदेश हैं !'

राधारमण—'शाद्वल प्रदेश ? आप······What do yon mean, Sir ?'

प्रभात—'ओएसिस।'

राधारमण—Oasis ! आप ठीक कहते हैं।

प्रभात कुछ देर तक राधारमण को देखता रहा। बोला—'आप मेरी मधुर भावनाओं के इन्द्रधनुष हैं !'

सन्ध्याकाल पटना 'न्यूमार्केट' देखकर तीनों रिक्शा से गाँधी मैदान के निकट 'एल्फिन्स्टन' सिनेमा हाल के बगल में उतर गए। 'सोडा फाउन्टेन' में जलपान किए। राधारमण भोज में चला गया। प्रभात उषा के साथ गाँधी मैदान की एक प्रस्तर बेंच पर बैठ गया। प्रभात बोला—'राधारमणजी सज्जनता की मुखर प्रतिभा हैं।' उषा बोली—'क्या तुम उन्हें देखने आओगे ?'

प्रभात—"मैं उनको देखने आऊँगा। मैंने तुम्हें नदी की धारा में छोड़ दिया। उन्होंने धारा में कूदकर तुम्हें खींच कर नाव में बैठा लिया। तुम नाव में बहुत कूदती हो। तो भी वे कितनी अच्छी तरह डांड़ चला रहे हैं? नाव में पानी अधिक होने से वह डूब जाती है। तुम नाव में पानी डालती हो। वे रंज नहीं होते। एक हाथ से पानी उलीचते हैं, दूसरे हाथ से डांड़ा चलाते हैं। उलाहना भी नहीं देते। ऐसे नाविक के साथ ऐसा व्यवहार वांछनीय नहीं। तुम नाव में पानी न आने दो। तुमको वे किनारे लगा देंगे।

नाव में बैठकर पानी की धारा में बहते समय बहुत जीव मिलते हैं। सेवार, पत्ते, फूल बहुत मिलते हैं। कुछ हरे, कुछ लाल, कुछ नीले, कुछ पीले।

हमारा कर्तव्य है उनको देखकर, उनको सुनकर, उनका कल्याण कर आगे बढ़ना! हमें उन्हें देखकर नाव से पानी में कूदना नहीं है। यदि हम यह समझें कि वे हमारा आवाहन कर रहे है तो यह हमारी अन्तर्चेतना की महानता है। पर वे हमारा आवाहन इसलिए नहीं करते कि हम उन्हें पानी में गिरकर स्वयं अपना आधार खो दें। उनके आवाहन का यह रहस्य है—वे पानी में उगते हैं, खिलते हैं, और इसी में मिट भी जाते हैं। मिलता क्या है? जो यात्रा करते हैं, उनका प्यार, उनका स्पर्श, उनका हास, उनकी दृष्टि ......।

इसलिए तुम भी अपनी दृष्टि लगाते जाओ। अगर सम्भव है तो हमें भी अपने साथ अपने किनारे तक लेते चलो। तुम्हारे साथ रहेंगे। मिट भी जाएंगे तो दुःख न होगा।

उषा तुम अपने नाविक के प्रति ईमानदार बनो—घोर ईमानदार! जो इधर-उधर से मिल जाते हैं—'उन्हें भी कुछ स्नेह दे देना।'

उषा—'तो क्या तुम इधर-उधर से मिले हो ?'
प्रभात—'हाँ, अब तो ऐसा ही मानना होगा।'
उषा—'जो कहो······।'

दोनों बातें करते हुए रिक्शे पर बैठ गए। रास्ते में प्रभात ने ज्योत्स्ना के विषय में उषा से बहुत कुछ कहा। उसने उषा से कहा कि ज्योत्स्ना डर रही है कि तुम यह न समझो कि वह मुझ से शादी करना चाहती है। उषा यह सुनकर आश्चर्य करने लगी। उषा ने कहा—'जो हुआ वह हुआ। ज्योत्स्ना के लिए ऐसा सोचना ठीक नहीं।' प्रभात ने प्रमोद के विषय में भी बताया। उसने कहा कि प्रमोद अपनी समझ से हम तीनों से अलग हो गया है। पर मैं इसे अच्छा नहीं समझता ? मैं चाहता हूँ—वह पुनः हम सबके बीच में आए रहे, बातें करें। तुमको देखें, तुम्हारे 'उनको' देखें, ज्योत्स्ना से मिले। हम चारों मिलकर साहित्य की श्री वृद्धि करें। ज्योत्स्ना के पास रूप भी है, बुद्धि भी है, धन भी है। प्रमोद के पास प्रतिभा है। तुम भी अब अच्छी कविताएँ लिख रच लेती हो। तुम मेरे घर 'उनके' साथ ही चलो। मैं उन्हें तैयार कर लूँगा।' उषा चलने के लिए तैयार हो गयी।

प्रभात ने राधारमण को भी अपने घर रहने के लिए तैयार कर लिया।

चार दिनों के बाद प्रभात कानपुर चला आया। राधारमण तथा उषा उसे स्टेशन तक छोड़ने आए। प्रभात कहता चला गया—

'प्रकृति आप दोनों के जीवन में चाँद की शीतलता, अंशु-माली की प्रखरता, पुष्प की सुरभि, किसलय की कोमलता, इन्द्र धनुष की रंगीनी भरती रहे!'

—:※:—

ज्योत्स्ना

ज्योत्स्ना के प्रकाशन गृह का कार्य काफी गति में था। अच्छे-अच्छे साहित्यकारों को पुरस्कार मिले। प्रभात को भी पुरस्कार दिया गया। पर उसने यह कहकर अस्वीकार कर दिया कि यदि मानव का हृदय उसकी रचनाओं मे परिवर्तित होता है, तो उसके लिए वही सबसे बड़ा पुरस्कार है। उसने स्पष्ट कह दिया कि उसका सर्वश्रेष्ठ पुरस्कार यही है कि मानव का स्तर ऊँचा हो जाए ?

ज्योत्स्ना ने भी एक शोध ग्रन्थ लिखा—'हिन्दी साहित्य में नए 'वाद'।'

इसमें उसने स्पष्ट कर दिया कि मुक्त छन्द साहित्य में वर्जित नहीं है। उसमें प्रवाह होना चाहिए। 'प्रयोगवाद' भी कल्याणकारी है यदि उसमें का छिछालेदर निकाल दिया जाए। छन्द भी काव्य की आवश्यकता बताया गया।

ज्योत्स्ना प्रमोद को किसी भी मूल्य पर अपने साथ रखना चाहती थी। इसलिए एक रात प्रमोद से मिलने चल दी।

प्रमोद अपने कमरे में था। ज्योत्स्ना बैग लिए पहुँची। प्रमोद देखता ही रह गया।

ज्योत्स्ना—'हाँ, मैं ! यहाँ !!'

प्रमोद—'ऐसी क्या बात थी ?'

ज्योत्स्ना—'स्वार्थ है ।'

प्रमोद की पत्नी चाय लिए पहुँची । वह ज्योत्स्ना को देखकर प्रमोद की तरफ देखने लगी । प्रमोद ने ज्योत्स्ना का परिचय कराया । ज्योत्स्ना चाय की चुस्की लेने लगी । प्रमोद उसके मुँह को देखने लगा ।

ज्योत्स्ना हँसते हुए बोली—'क्या देख रहे हो ? तुम्हारी पत्नी सुमुखी तो बहुत सुन्दर है ।'

प्रमोद—'आपसे भी सुन्दर ?'

ज्योत्स्ना—'हाँ, ऐसा ही समझो । पर अब इन बातों से क्या लेना-देना है ?'

प्रमोद—'यह तो मैं भूल ही जाता हूँ ।'

प्रमोद ने प्रभात के विषय में बातें की । ज्योत्स्ना ने बताया कि उषा का विवाह प्रभात से न हो सका । इससे प्रमोद को वास्तविक दुःख हुआ । प्रमोद ने पूछा—

'आप अपना विवाह क्यों नहीं कर लेती ? इसके साथ कुछ मोह है क्या ?'

ज्योत्स्ना—'हाँ, प्रभात से विवाह करने का मोह ।'

प्रमोद—'ऐसा तो मुझे चिढ़ाने के लिए कह रही हैं ! पर मेरा विश्वास 'रोमन्टिसिज्म' में अधिक है । दुनिया में दो प्रकार के व्यक्ति उन्नति करते हैं—

(क) रोमान्टिक

(ख) क्लैसिकल

मैं 'रोमान्टिक' हूँ । मैं क्लेसिकल कभी नहीं हो सकता ।'

ज्योत्स्ना—'मैं 'कवच' धारण करना नहीं चाहती।'

सुमुखी आयी। ज्योत्स्ना उससे घुल मिलकर बातें करने लगी।

ज्योत्स्ना ने प्रमोद को अपने प्रकाशनगृह के विषय में बताया। प्रमोद साथ देने को तैयार हो गया।

ज्योत्स्ना लौट आयी।

ज्योत्स्ना साहित्य सम्बन्धी कुछ चर्चा करने दिल्ली गयी थी। चार दिनों के बाद लौटी। प्रभात को पत्र लिखने लगी—

प्रभात,

तुम्हारा पत्र नहीं मिल रहा है। कुछ रंज है तुमसे। तुमने मुझसे पूछा था : ज्योत्स्ना, तुम किसी किनारे क्यों नहीं लगती? अर्थात् तुम मुझे विवाहिता देखना चाहते थे। मैंने भी पूछा था : 'तुम क्यों अविवाहित हो?' तब तुमने जवाब दिया था। 'साहित्यकार सबको सुखी देखना चाहता है।' तब मुझे तुम अलग समझने लगे थे। तब तुमने नहीं स्वीकार किया मैं भी एक साहित्य-सेविका हूँ। तुम्हारे साथ होने से ही मुझमें इतनी भावुकता आ गयी। अब तो तुम मानोगे ही कि मैं भी तुम्हारा एक अंग हूँ। तो मेरे साथ जो निर्णय होगा, वह तुम्हारे लिए भी सत्य होगा।

आज दिल्ली से लौटी। तुम नहीं गए। देखूँ, कब भेंट होती है। तुम विवाह कर लो। मैं उसे देखना चाहती हूँ जो तुम्हारी पत्नी बनकर आएगी। जब भी यह बात सोचती हूँ

तो आह्लाद भर जाता है हृदय में ! डगा एक किनारे लग ही गयी ।

नारी से तुम्हें प्रेरणा ही मिलेगी, घृणा नहीं । नारी बहुत सहती है । बहुत दूर तक साथ चलती है । तुम्हारी बेचैनी में वह तुम्हें शान्ति देगी । प्रसाद ने कभी लिखा था कि नारी श्रद्धा है । कह सकते हो, मैं उस वर्ग की हूँ इसलिए ऐसा कहती हूँ । पर तुम ऐसा न सोचना । पुरुष के प्रति मुझे घृणा नहीं है । पुरुष तो नारी का आलम्बन है ही ! प्रमोद से मेरा विरोध था । पर उसमें 'जीवित पुरुष' से मेरा विरोध नहीं था । विरोध था उसमें उत्पन्न 'मानवीय दुर्भावना' से ।

तुम कह सकते हो, मैं अच्छे पुरुष को वरण करना चाहती हूँ । तो क्या यह अनुचित है ? चाँद की चाँदनी में कितनी धवलता है ? बादल घने हैं श्याम है तो वर्षा कितनी सुख-दायिनी ? क्षितिज का विस्तार जितना है, उगनेवाला सूर्य भी उतना ही विशाल है । पर ऐसा आभास होता है कि इन सब प्रश्नों के उठने के पहले ही मैं इस दुनिया से उठ जाऊँगी । क्या मेरे मरने पर तुम रोओगे ? बहुत देर तक रोओगे ? तुमको क्या ऐसा आभास होगा कि तुम्हारा बहुत कुछ चला गया ? आज इतनी भावुकता जगी है कि बाँध ही नहीं पा रही हूँ । मेरे कवि ! मेरे प्रभात !! तुमको सौ-सौ बार प्रणाम !

तुम्हारी,

ज्योत्स्ना ।

रात में आँधी आने से बिजली की बत्तियाँ बुझ गयी थीं। ज्योत्स्ना मोमबत्ती जलाकर पत्र लिख रही थी। पत्र लिखकर बक्स में रख दिया और एक किताब लेकर पढ़ने लगी।

पढ़ते-पढ़ते नींद आ गयी। अभाग्य से मोमबत्ती की लौ साड़ी में लग गयी। साड़ी आग पकड़ने लगी। धीरे-धीरे बहुत अधिक अंश आग के अन्दर आ गया। जब शरीर में गर्मी मालूम पड़ी तो ज्योत्स्ना जागी। नायलन की साड़ी थी। ज्योत्स्ना चिल्लाने लगी—गोरख, मंगरू, रामा, केदार दौड़ो—आग लगी, आग लगी, मैं मर गयी ! मैं मर गयी !! आग उसके शरीर में तेजी से फैलने लगी। नायलन की साड़ी से और तेजी से जलने लगी। आधा शरीर मिनटों में जल गया। विमल और अन्य व्यक्ति दौड़े आए। ज्योत्स्ना बेहोश थी। विमल दौड़कर बुझाने लगा; उसका भी हाथ जल गया। पर आग न बुझ सकी। ज्योत्स्ना जल गयी। ज्योत्स्ना जलकर मर गयी !! प्रभात प्रभात चिल्लाते हुए मर गयी !!! विमल रोता हुआ जमीन पर गिर पड़ा। पर क्या करता ? मृत्यु के सामने मनुष्य तो बराबर हारता रहा है ! बहुत लोग आए। सान्त्वना देकर चले गए ! समाचार पत्रों में बड़े अक्षरों में छपा : ज्योत्स्ना जी जल मरी। भारत की एक साहित्य-सेविका का अन्त।

प्रभात भी दो दिनों के बाद आया। पर आकर भी क्या करता ? ज्योत्स्ना की लाश मणिकर्णिकाघाट पर जला दी गयी। उसका नश्वर शरीर जल गया। पर साहित्य के लिए किया गया बलिदान उसे अमर कर गया।

प्रभात बहुत रोया। पर रोकर भी क्या करता। अपने ज्योत्स्ना के अधूरे कार्यों की पूर्ति में सब कुछ था। प्रभात अपने पूरे सामान के साथ काशी लौट आया। पुस्तक सदन का कार्य यहीं आरम्भ कर दिया।

उषा तथा राधारमण अचानक एक दिन पहुँच गए। प्रभात ने पूछा—'आप दोनों यहाँ कैसे और क्यों पहुँच गए ?'

राधारमण—'उषा को जिस दिन ज्योत्स्ना की मृत्यु का समाचार मिला उसी दिन यहाँ आने के लिए बेचैन थी। मैं उसे आने नहीं देता था।'

प्रभात कुछ नहीं बोला। उषा सोयी हुई थी। अन्दर जा कर उसे देखने लगा। केश राशि उसके मुँह को ढके हुए थी। कुछ पीलापन छा गया था। तो भी आस्था तथा विश्वास का आभास होता था। प्रभात का मन भारी हो गया। वह खाट के निकट ही बैठ गया। उषा के सिर पर हाथ रखकर केशों पर चोट करता रहा। उषा जग गयी। प्रभात को बैठा देखकर बोली—'कब से बैठे हो ? मुझे जगाया क्यों नहीं ?' उषा ने देखा प्रभात बैठा ही नहीं है, उसकी आँखें भी सफेद हो गयी हैं, ओठ भी काँप रहे हैं। उषा घबरा गयी। उसने प्रभात को झकझोरा। प्रभात मौन रहा। प्यार से बोली—'क्या हुआ है ? बोलो न ?'

प्रभात—'सब ठीक है।'

उषा—'नहीं, कुछ और बोलो।'

प्रभात—'तुम इस अवस्था में क्यों आयीं ?'

उषा–'किस अवस्था में ...... और यदि आयी ही तो क्या हुआ ?'

प्रभात : 'उसके साथ भी मेरा अपनापन है !'

उषा : 'सबसे अधिक है ! पर तुम्हारी ज्योत्स्ना कैसी थी यह भी तो समझो ! ज्योत्स्ना से अलग होकर तुम्हें कैसा लग रहा है ?'

प्रभात : 'मैं उतना कमजोर नहीं हूँ ।'

उषा : 'पर सबसे अधिक भावुक हो । ज्योत्स्ना से अधिक तुम्हारे निकट कौन आया । वह तुम्हें समझ चुकी थी ।'

प्रभात : 'अच्छा, खाना खालो ।'

उषा : 'खाऊँगी ।'

कुछ दिनों के बाद उषा को एक पुत्र हुआ । प्रमोद भी अपनी पत्नी के साथ आ गया । प्रमोद ने ही उषा के पुत्र का नाम दिनेश रक्खा । सब मिलकर साहित्य की सेवा करने लगे । ज्योत्स्ना की स्मृति में एक स्मारक बनवाया गया । वहाँ साहित्य के पुस्तकों की प्रदर्शनी भी लगने लगा । एक हिन्दी भाषा-शोध मन्दिर की भी स्थापना हुई ।

\+ + + +

प्रभात, प्रमोद, उषा, राधारमण, सुमुखी तथा दिनेश सब मिलकर साहित्य की सेवा कर रहे हैं । किसी तरह की कटुता नहीं है । प्रमोद ने अपने 'आलोचक' के चश्मे का शीशा भी बदल दिया है ।

दिनेश प्रभात का सच्चा उत्तराधिकारी प्रमाणित हुआ है। वह सोलह वर्ष का हो गया है। प्रतिदिन सुबह ज्योत्स्ना के स्मारक पर फूल चढ़ाने जाता है। सन्ध्या को बहुत लोग वहाँ जाते हैं और साहित्य की चर्चा करते हैं। प्रभात बूढ़ा हो चला है। आँखों से चीजें कम दिखाई पड़ती हैं। उसकी ख्याति दूर दूर तक फैल गयी है। लोग उसके दर्शन के लिए भीड़ लगाए रहते हैं।